द्विवेदीयुगीन काव्य प्रवृत्तियाँ

(Poetic Trends in Dwivedi Period)

पृथ्वी सिंह

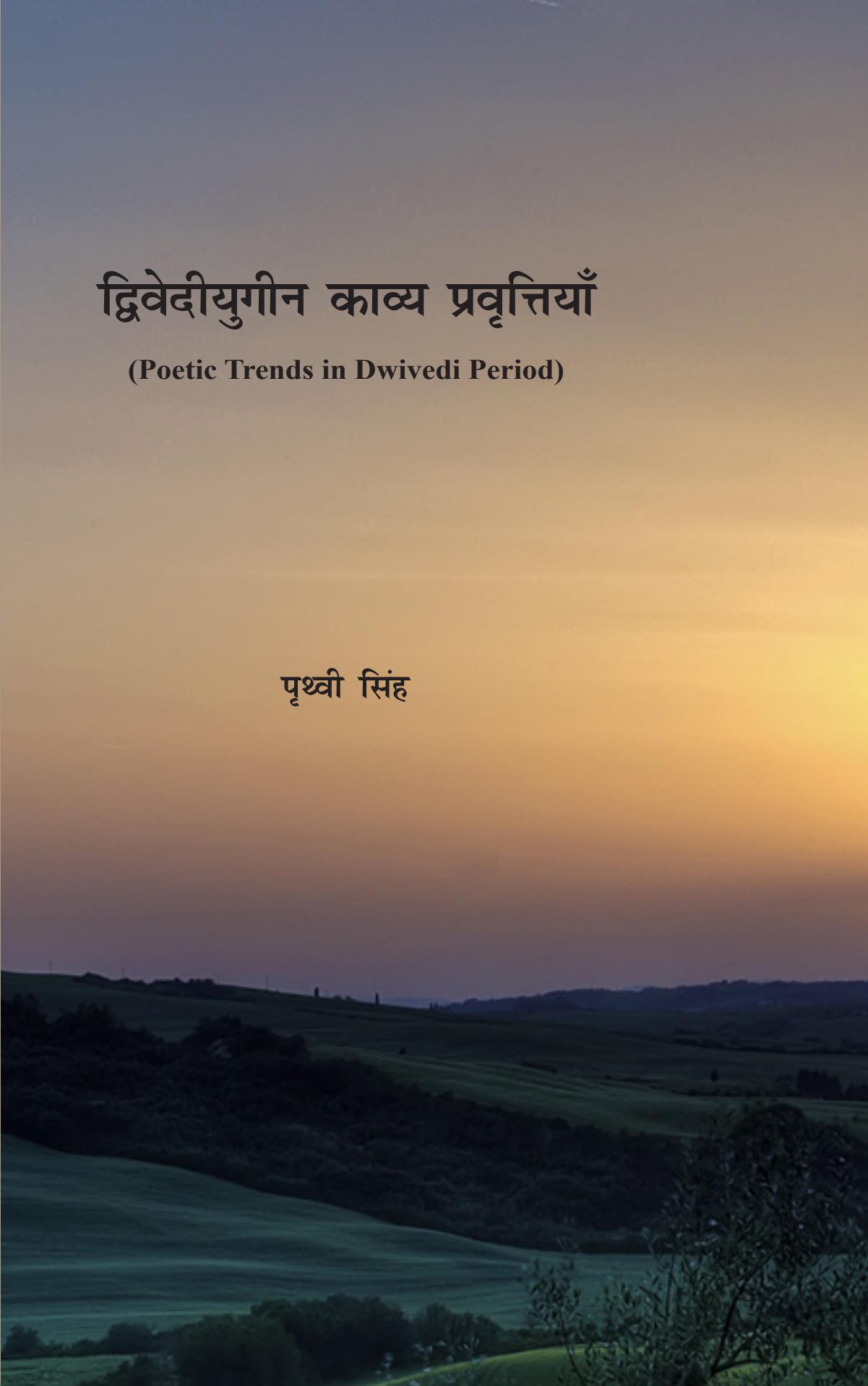

द्विवेदी युगीन काव्य प्रवृत्तियाँ

द्विवेदी युगीन काव्य प्रवृत्तियाँ
(Poetic Trends in Dwivedi Period)

पृथ्वी सिंह

भाषा प्रकाशन
नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5486-4

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

महावीर प्रसाद द्विवेदी का साहित्य आधुनिक हिन्दी साहित्येतिहास का आदिकाल है। इसका पहला चरण भारतेन्दु-युग है एवं दूसरा चरण द्विवेदी-युग। महावीर प्रसाद द्विवेदी एक ऐसे साहित्यकार थे, जो बहुभाषाविद् होने के साथ ही साहित्य के इतर विषयों में भी समान रुचि रखते थे। उन्होंने सरस्वती का अठारह वर्षों तक संपादन कर हिन्दी पत्रकारिता में एक महान कीर्तिमान स्थापित किया था। वे हिन्दी के पहले व्यवस्थित समालोचक थे, जिन्होंने समालोचना की कई पुस्तकें लिखी थीं। वे खड़ी बोली हिन्दी की कविता के प्रारंभिक और महत्त्वपूर्ण कवि थे। आधुनिक हिन्दी कहानी उन्हीं के प्रयत्नों से एक साहित्यिक विधा के रूप में मान्यता प्राप्त कर सकी थी। वे भाषाशास्त्री थे, अनुवादक थे, इतिहासज्ञ थे, अर्थशास्त्री थे तथा विज्ञान में भी गहरी रुचि रखने वाले थे। अंततः वे युगांतर लाने वाले साहित्यकार थे या दूसरे शब्दों में कहें, युग निर्माता थे। वे अपने चिन्तन और लेखन के द्वारा हिन्दी प्रवेश में नव-जागरण पैदा करने वाले साहित्यकार थे।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर ही यह काल 'द्विवेदी युग' के नाम से जाना जाता है। इसे 'जागरण सुधारकाल' भी कहा जाता है। इस समय ब्रिटिश दमन चक्र बहुत बढ़ गया था। जनता में असंतोष और क्षोभ की भावना प्रबल थी। ब्रिटिश शासकों द्वारा लोगों का आर्थिक-शोषण भी चरम पर था। देश के स्वाधीनता संग्राम के नेताओं द्वारा पूर्ण-स्वराज्य की माँग की जा रही थी।

गोपालकृष्ण गोखले और लोकमान्य गंगाधर तिलक जैसे नेता देश के स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व कर रहे थे। इस काल के साहित्यकारों ने न सिर्फ देश की दुर्दशा का चित्रण किया, बल्कि देशवासियों को आजादी की प्राप्ति की प्रेरणा भी दी। राजनीतिक चेतना के साथ-साथ इस काल में भारत की आर्थिक चेतना भी विकसित हुई।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

–लेखक

अनुक्रम

प्रस्तावना *v*

1. द्विवेदी युग **1**

नामकरण 7

द्विवेदीजी का योगदान 7

रामचन्द्र शुक्ल की विवेचना 11

द्विवेदी युग, खड़ी बोली और सरस्वती पत्रिका 12

2. महावीर प्रसाद द्विवेदी **22**

जीवन परिचय 22

शिक्षा 22

कार्यक्षेत्र 23

व्यक्तित्त्व 23

आलोचक 24

मूल्यांकन 24

3. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' **29**

परिवार और शिक्षा 29

कार्यक्षेत्र 29

सर्वाधिक प्रसिद्धि 30

प्रियप्रवास 30

खड़ी बोली काव्य-रचना 33
श्रीकृष्ण का चरित्र-चित्रण 36
4. जगन्नाथदास रत्नाकर 43
जीवन परिचय 43
शिक्षा 44
जीविकोपार्जन 44
भाषा-शैली 46
5. रामनरेश त्रिपाठी 49
जीवन परिचय 49
हे प्रभु आनन्ददाता की रचना 50
साहित्य साधना की शुरुआत 50
स्वच्छन्दतावादी कवि 51
कृतियाँ 53
रचनाएँ 53
6. मैथिलीशरण गुप्त 57
जीवन परिचय 58
जयन्ती 59
कृतियाँ 59
रहस्यात्मकता एवं आध्यात्मिकता 63
नारी मात्र की महत्ता का प्रतिपादन 64
पतिवियुक्ता नारी का वर्णन 64
प्रकृति वर्णन 65
प्रबंध काव्य 69
विरहिणी 70
अनुरागिनी 71
7. मुकुटधर पांडेय 76
परिचय 76
पुरस्कार 77
कविता 88
8. लोचन प्रसाद पांडेय 94
जन्म तथा परिवार 94

शिक्षा 95
स्वभाव 95
साहित्यिक कृतित्त्व 95
9. बालमुकुंद गुप्त 97
जीवनी 97
रचनाएँ 98
शिवशंभु के चिट्ठे 98
श्रीमान् का स्वागत् 102
पीछे मत फेंकिए 109
लार्ड मिन्टो का स्वागत 131
आशीर्वाद 139

1

द्विवेदी युग

महावीर प्रसाद द्विवेदी का साहित्य आधुनिक हिन्दी साहित्येतिहास का आदिकाल है। इसका पहला चरण भारतेन्दु-युग है एवं दूसरा चरण द्विवेदी-युग। महावीर प्रसाद द्विवेदी एक ऐसे साहित्यकार थे, जो बहुभाषाविद् होने के साथ ही साहित्य के इतर विषयों में भी समान रुचि रखते थे। उन्होंने सरस्वती का अठारह वर्षों तक संपादन कर हिन्दी पत्रकारिता में एक महान कीर्तिमान स्थापित किया था। वे हिन्दी के पहले व्यवस्थित समालोचक थे, जिन्होंने समालोचना की कई पुस्तकें लिखी थीं। वे खड़ी बोली हिन्दी की कविता के प्रारंभिक और महत्त्वपूर्ण कवि थे। आधुनिक हिन्दी कहानी उन्हीं के प्रयत्नों से एक साहित्यिक विधा के रूप में मान्यता प्राप्त कर सकी थी। वे भाषाशास्त्री थे, अनुवादक थे, इतिहासज्ञ थे, अर्थशास्त्री थे तथा विज्ञान में भी गहरी रुचि रखने वाले थे। अंततः वे युगांतर लाने वाले साहित्यकार थे या दूसरे शब्दों में कहें, युग निर्माता थे। वे अपने चिन्तन और लेखन के द्वारा हिन्दी प्रवेश में नव-जागरण पैदा करने वाले साहित्यकार थे।

महावीर प्रसाद द्विवेदी हिन्दी के पहले साहित्यकार थे, जिनको 'आचार्य' की उपाधि मिली थी। इसके पूर्व संस्कृत में आचार्यों की एक परंपरा थी। मई, 1933 ई. में नागरी प्रचारिणी सभा ने उनकी सत्तरवीं वर्षगाँठ पर बनारस में एक बड़ा साहित्यिक आयोजन कर द्विवेदी का अभिनंदन किया था उनके सम्मान में द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ का प्रकाशन कर, उन्हें समर्पित किया था। इस अवसर पर

द्विवेदी जी ने जो अपना वक्तव्य दिया था, वह 'आत्म-निवेदन' नाम से प्रकाशित हुआ था। इस 'आत्म-निवेदन' में वे कहते हैं, ''मुझे आचार्य की पदवीं मिली है। क्यों मिली है, मालूम नहीं। कब, किसने दी है, यह भी मुझे मालूम नहीं। मालूम सिर्फ इतना ही है कि मैं बहुधा-इस पदवी से विभूषित किया जाता हूँ। ...शंकराचार्य, माध्वाचार्य, सांख्याचार्य आदि के सदृश किसी आचार्य के चरणरज: कण की बराबरी मैं नहीं कर सकता। बनारस के संस्कृत कॉलेज या किसी विश्वविद्यालय में भी मैंने कदम नहीं रखा। फिर इस पदवी का मुस्तहक मैं कैसे हो गया ?'' महावीर प्रसाद द्विवेदी ने मैट्रिक तक की पढ़ाई की थी। तत्पश्चात् वे रेलवे में नौकरी करने लगे थे।

उसी समय इन्होंने अपने लिए सिद्धान्त निश्चित किए-वक्त की पाबंदी करना, रिश्वत न लेना, अपना काम ईमानदारी से करना और ज्ञान-वृद्धि के लिए सतत् प्रयत्न करते रहना। द्विवेदी जी ने लिखा है, ''पहले तीन सिद्धान्तों के अनुकूल आचरण करना तो सहज था, पर चौथे के अनुकूल सचेत रहना कठिन था। तथापि सतत् अभ्यास से उसमें भी सफलता होती गई। तार बाबू होकर भी, टिकट बाबू, माल बाबू, स्टेशन मास्टर, यहाँ तक कि रेल पटरियाँ बिछाने और उसकी सड़क की निगरानी करने वाले प्लेट-लेयर (Permanent way Inspector) तक का भी काम मैंने सीख लिया। फल अच्छा ही हुआ। अफसरों की नजर मुझ पर पड़ी। मेरी तरक्की होती गई। वह इस तरह की एक दफे मुझे छोड़कर तरक्की के लिए दरख्वास्त नहीं देनी पड़ी।'' द्विवेदी जी 15 रुपये मासिक पर रेलवे में बहाल हुए थे और जब उन्होंने 1904 ई. में नौकरी छोड़ी, उस वक्त 150 रुपये मूल वेतन एवं 50 रुपये भत्ता मिलता था, यानि कुल 200 रुपये।

उस जमाने में यह एक बहुत बड़ी राशि थी। वे 18 वर्ष की उम्र में रेलवे में बहाल हुए थे। उनका जन्म 1864 ई. में हुआ था और 1882 ई, से उन्होंने नौकरी प्रारंभ की थी। नौकरी करते हुए वे अजमेर, बंबई, नागपुर, होशंगाबाद, इटारसी, जबलपुर एवं झाँसी शहरों में रहे। इसी दौरान उन्होंने संस्कृत एवं ब्रज भाषा पर अधिकार प्राप्त करते हुए पिंगल अर्थात् छंदशास्त्र का अभ्यास किया। उन्होंने अपनी पहली पुस्तक 1895 ई. में श्रीमहिम्नस्तोत्र की रचना की, जो पुष्यदंत के संस्कृत काव्य का ब्रज भाषा में काव्य रूपांतर है। द्विवेदी जी ने सभी पद्यरचनाओं का भावार्थ खड़ी बोली गद्य में ही किया है। उन्होंने इसकी भूमि का में लिखा है, ''इस कार्य में हुशंगाबादस्थ बाबू हरिश्चन्द्र कुलश्रेष्ठ का, जो सांप्रत

मध्य प्रदेश राजधानी नागपुर में विराजमान हैं, मैं परम कृतज्ञ हूँ।'' अपने 'आत्म-निवेदन' में उन्होंने लिखा है, ''बचपन से मेरा अनुराग तुलसीदास की रामायण और ब्रजवासीदास के ब्रजविलास पर हो गया था। फुटकर कविता भी मैंने सैंकड़ों कंठ कर ली थी। हुशंगाबाद में रहते समय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के कविवचन सुधा और गोस्वामी राधाचरण के एक मासिक पत्र ने मेरे उस अनुराग की वृद्धि कर दी। वहीं मैंने बाबू हरिश्चंद्र कुलश्रेष्ठ नाम के एक सज्जन से, जो वहीं कचहरी में मुलाजिम थे, पिंगल का पाठ पढ़ा। फिर क्या था, मैं अपने को कवि ही नहीं, महाकवि समझने लगा।

मेरा यह रोग बहुत दिनों तक ज्यों का त्यों बना रहा। 1889 से 1892 ई. तक द्विवेदी जी की इस प्रकार की कई पुस्तकें प्रकाशित हुई-विनय-विनोद, विहार-वाटिका, स्नेहमाला, ऋतु तरंगिनी, देवी स्तुति शतक, श्री गंगालहरी आदि। 1896 ई. में इन्होंने लॉर्ड बेकन के निबंधों का हिन्दी में भावार्थ मूलक रूपांतर किया, जो बेकन-विचार रत्नावली पुस्तक में संकलित हैं। 1898 ई. में इन्होंने हिन्दी कालिदास की आलोचना लिखी, जो हिन्दी की पहली आलोचनात्मक पुस्तक है। 1988 ई. में श्रीहर्ष के नैषधीयचरितम पर इन्होंने नैषध-चरित चर्चा नामक आलोचनात्मक एवं गवेषणात्मक पुस्तक लिखी। यह सिलसिला जो शुरू हुआ, वह 1930-31 ई. तक चला और द्विवेदी जी की कुल पच्चासी पुस्तकें प्रकाशित हुई।

जनवरी, 1903 ई. से दिसंबर, 1920 ई. तक इन्होंने सरस्वती नामक मासिक पत्रिका का संपादन कर एक कीर्तिमान स्थापित किया था, इसीलिए इस काल को हिन्दी साहित्येतिहास में 'द्विवेदी-युग' के नाम से जाना जाता है। अपने प्रकांड पांडित्य के कारण इन्हें 'आचार्य' कहा जाने लगा। उनके व्यक्तित्त्व के बारे में आचार्य किशोरी दास वाजपेयी ने लिखा है, ''उनके सुदृढ़ विशाल और भव्य कलेवर को देखकर दर्शक पर सहसा आतंक छा जाता था और यह प्रतीत होने लगता था कि मैं एक महान ज्ञानराशि के नीचे आ गया हूँ।'' द्विवेदी जी का मानना था कि 'ज्ञान-राशि' के संचित कोष का ही नाम साहित्य है। द्विवेदी जी स्वयं तो एक 'महान ज्ञान-राशि' थे ही उनका संपूर्ण वाङ्मय भी संचित ज्ञानराशि है, जिससे होकर गुजरना अपनी जातीय परंपरा को आत्मसात् करते हुए विश्व चिन्तन के समक्ष भी होना है। डॉ. रामविलास शर्मा ने द्विवेदी जी के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए लिखा है, ''द्विवेदी जी ने अपने साहित्य जीवन के आरंभ में पहला काम यह किया कि उन्होंने अर्थशास्त्र का अध्ययन किया।

उन्होंने जो पुस्तक बड़ी मेहनत से लिखी और जो आकार में उनकी और पुस्तकों से बड़ी है, वह संपत्तिशास्त्र है।.....अर्थशास्त्र का अध्ययन करने के कारण द्विवेदी जी बहुत-से विषयों पर ऐसी टिप्पणियाँ लिख सके, जो विशुद्ध साहित्य की सीमाएँ लाँघ जाती हैं।

इसके साथ उन्होंने राजनीति विषयों का अध्ययन किया और संसार में जो महत्त्वपूर्ण राजनीतिक घटनाएँ हो रही थीं, उन पर उन्होंने लेख लिखे। राजनीति और अर्थशास्त्र के साथ उन्होंने आधुनिक विज्ञान से परिचय प्राप्त किया और इतिहास तथा समाजशास्त्र का अध्ययन गहराई से किया। इसके साथ भारत के प्राचीन दर्शन और विज्ञान की ओर इन्होंने ध्यान दिया और यह जानने का प्रयत्न किया कि हम अपने चिन्तन में कहाँ आगे बढ़े हुए हैं और कहाँ पिछड़े हैं। इस तरह की तैयारी उनसे पहले किसी संपादक ने न की थी। परिणाम यह हुआ कि हिन्दी प्रवेश में नवीन सामाजिक चेतना के प्रसार के लिए वह सबसे उपयुक्त व्यक्ति सिद्ध हुए।''

ऐसे महान ज्ञान-राशि के पुंज थे आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी। किन्तु रामविलास शर्मा के पूर्व जितने भी आलोचक हुए, उन्होंने द्विवेदी जी का उचित मूल्यांकन तो नहीं किया, अपितु उनका अवमूल्यन ही किया। इन महान आलोचकों में रामचन्द्र शुक्ल, नंददुलारे वाजपेयी एवं हजारी प्रसाद द्विवेदी प्रमुख हैं। रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य का इतिहास में द्विवेदी जी पर, जो टिप्पणी की है, उस पर एक नजर डालें, ''द्विवेदी जी ने सन् 1903 ई. में सरस्वती के संपादन का भार लिया। तब से अपना सारा समय लिखने में ही लगाया। लिखने की सफलता वे इस बात में मानते थे कि पाठक भी उससे बहुत-कुछ समझ जाएँ। कई उपयोगी पुस्तकों के अतिरिक्त उन्होंने फुटकर लेख भी बहुत लिखे। पर इन लेखों में अधिकतर लेख 'बातों के संग्रह' के रूप में ही है। भाषा के नूतन शक्ति चमत्कार के साथ नए-नए विचारों की उद्‌भावना वाले निबंध बहुत ही कम मिलते हैं।

स्थायी निबंधों की श्रेणी में चार ही लेख, जैसे 'कवि और कविता', 'प्रतिभा' आदि आ सकते हैं। पर ये लेखन काल या सूक्ष्म विचार की दृष्टि से लिखे नहीं जान पड़ते। 'कवि और कविता' कैसा गंभीर विषय है, कहने की आवश्यकता नहीं। पर इस विषय की बहुत मोटी-मोटी बातें बहुत मोटे तौर पर कही गई हैं।'' इसी प्रसंग में रामचन्द्र शुक्ल आगे लिखते हैं, ''कहने की आवश्यकता नहीं कि द्विवे जी जी के लेख या निबंध विचारात्मक श्रेणी में

आएँगे। पर विचार की वह गूढ़ गुंफित परंपरा उनमें नहीं मिलती जिससे पाठक की बुद्धि उत्तेजित होकर किसी नई विचार-पद्धति पर दौड़ पड़े। शुद्ध विचारात्मक निबंधों का चरम उत्कर्ष वही कहा जा सकता है जहाँ एक पैराग्राफ में विचार दबा-दबाकर कसे गए हों और एक-एक वाक्य किसी संबद्ध विचारखंड के लिए हों। द्विवेदी जी के लेखों को पढ़ने में ऐसा जान पड़ता है कि लेखक बहुत मोटी अक्ल के पाठकों के लिए लिख रहा है।''

अब आप देखें कि महावीर प्रसाद द्विवेदी के लेखन के प्रति रामचंद्र शुक्ल की ये टिप्पणी पढ़कर हिन्दी का कोई भी पाठक उससे विरक्त होगा या आसक्त। रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास को हिन्दी के विद्यार्थी साठ-पैंसठ वर्षों से आप्त वचनों की तरह याद करते आ रहे हैं। ऐसे में मूल पाठ से उनके आप्त वाक्यों का यदि मिलान कर परीक्षण न किया जाए, तो अनर्थ होगा ही। रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी के सबसे बड़े समालोचक, सबसे बड़े साहित्येतिहास-लेखक हैं। इसी इतिहास में वे महावीर प्रसाद द्विवेदी के ऐतिहासिक योगदानों को सिर्फ भाषा-परिष्कारकर्ता के रूप में स्वीकार करते हैं। उनके शब्द हैं, ''यद्यपि द्विवेदी जी ने हिन्दी के बड़े-बड़े कवियों को लेकर गंभीर साहित्य समीक्षा का स्थायी साहित्य नहीं प्रस्तुत किया, पर नई निकली पुस्तकों की भाषा की खरी आलोचना करके हिन्दी साहित्य का बड़ा भारी उपकार किया है।

यदि द्विवेदी जी न उठ खड़े होते तो जैसा अव्यवस्थित, व्याकरण विरुद्ध और ऊटपटाँग भाषा चारों ओर दिखाई पड़ती थी, उसकी परंपरा जल्दी न रुकती। उसके प्रभाव से लेखक सावधान हो गए और जिनमें भाषा की समझ और योग्यता थी उन्होंने अपना सुधार किया।'' दरअसल शुक्ल जी जिस आलोचना-पद्धति का सहारा लेकर उक्त बातें लिख रहे थे, उसे अंग्रेजी में Judicial Criticism और हिन्दी में निर्णयात्मक आलोचना कहते हैं और इसका सबसे बड़ा दोष यह है कि इसके आलोचना के क्षेत्र में आलोचकों का ध्यान ऐतिहासिक युग, वातावरण एवं जीवन से हटाकर अधिकांशतः कलापक्ष तक ही सीमित कर दिया है। कलापक्ष की ओर ध्यान देने वाले आलोचकों का कहना हैं कि युगीन परिस्थितियाँ, युगीन चेतना और युग सत्य निरंतर परिवर्तनशील हैं अतएव इन्हें आधार नहीं बनाया जा सकता। उनकी परिवर्तनशीलता के कारण इन्हें साहित्य का स्थायी मानदंड स्वीकार किया जा सकता। लेकिन इसी के साथ यह भी सत्य है कि ऐसी दशा में निर्णयात्मक आलोचना का कोई मूल्य नहीं रहेगा।

इसका मुख्य कारण है ऐसे आलोचक का रचनाकार और रचना पर फतवे जारी करना। यही कारण है कि रामचंद्र शुक्ल ने द्विवेदी जी के विचारों को, उनके संचित ज्ञान-राशि पर ध्यान नहीं दिया और उनकी भाषा पर विचार किया। 'मोटी-मोटी बातें बहुत मोटे तौर पर'-यह अभिव्यक्ति की प्रणाली पर बात की जा रही है, जो निःसंदेह भाषा है। जब द्विवेदी जी मूर्ख या मोटे दिमाग वालों के लिए लिखते थे और मोटी तरह से लिखते थे तो उन्होंने भाषा परिष्कार कैसे किया ? जिस लेखक को भाषा की सतही समझ होगी, वह दूसरे लेखकों की भाषा को दुरुस्त कैसे करेगा ? पुनः रामचन्द्र शुक्ल की बातों पर विचार करें-महावीर प्रसाद द्विवेदी ने शाश्वत साहित्य या स्थायी साहित्य नहीं लिखा। उनका महत्त्व भाषा-सुधार में है और उनकी भाषा कैसी है-मोटी अक्ल वालों के लिए हैं। इस तरह की बातों से आचार्य शुक्ल का इतिहास भरा हुआ है। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी-नवरत्न की समीक्षा लिखते हुए लिखा है, ''इस तरह की बातें किसी इतिहासकार के ग्रंथ में यदि पाई जाएँ तो उसके इतिहास का महत्त्व कम हुए बिना नहीं रह सकता। इतिहास-लेखक की भाषा तुली हुई होनी चाहिए। उसे बेतुकी बातें न हाँकनी चाहिए। अतिश्योक्तियाँ लिखना इतिहासकार का काम नहीं। उसे चाहिए कि वह प्रत्येक शब्द और वाक्यांश के अर्थ को अच्छी तरह समझकर उसका प्रयोग करे।''

सन् 1933 ई. में आचार्य द्विवेदी को नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा अभिनंदन ग्रंथ भेंट किया गया। इसकी प्रस्तावना श्यामसुंदर दास एवं रायकृष्णदास के नाम से प्रकाशित हुई, किन्तु यह लिखी गई नंददुलारे वाजपेयी द्वारा। इसलिए यह 1940 ई. में प्रकाशित वाजपेयी जी की पुस्तक हिन्दी साहित्यः बीसवीं शताब्दी में संकलित है। इसमें यह विचार किया गया है कि स्थायी या शाश्वत साहित्य में द्विवेदी जी का साहित्य परिगणित हो सकता है या नहीं। इस दृष्टिकोण से महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखित संपूर्ण साहित्य को अयोग्य ठहरा दिया गया। सिर्फ उनके द्वारा संपादित सरस्वती के अंकों को ही महत्त्व दिया गया।

द्विवेदी युग का समय सन् 1900 से 1920 तक माना जाता है। बीसवीं शताब्दी के पहले दो दशक के पथ-प्रदर्शक, विचारक और साहित्य नेता आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर ही इस काल का नाम 'द्विवेदी युग' पड़ा। इसे 'जागरण सुधारकाल' भी कहा जाता है। महावीर प्रसाद द्विवेदी हिन्दी के ऐसे पहले लेखक थे, जिन्होंने अपनी जातीय परंपरा का गहन अध्ययन ही नहीं किया था, अपितु उसे आलोचकीय दृष्टि से भी देखा। उन्होंने वेदों से लेकर पंडितराज

जगन्नाथ तक के संस्कृत साहित्य की निरंतर प्रवाहमान धारा का अवगाहन किया एवं उपयोगिता तथा कलात्मक योगदान के प्रति एक वैज्ञानिक नजरिया अपनाया। कविता की दृष्टि से द्विवेदी युग 'इतिवृत्तात्मक युग' था। इस समय आदर्शवाद का बोलबाला रहा। भारत का उज्ज्वल अतीत, देश-भक्ति, सामाजिक सुधार, स्वभाषा-प्रेम आदि कविता के मुख्य विषय थे। नीतिवादी विचारधारा के कारण शृंगार का वर्णन मर्यादित हो गया। कथा-काव्य का विकास इस युग की विशेषता है। मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी आदि इस युग के यशस्वी कवि थे। जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने इसी युग में ब्रज भाषा में सरस रचनाएँ प्रस्तुत कीं।

नामकरण

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर ही यह काल 'द्विवेदी युग' के नाम से जाना जाता है। इसे 'जागरण सुधारकाल' भी कहा जाता है। इस समय ब्रिटिश दमन चक्र बहुत बढ़ गया था। जनता में असंतोष और क्षोभ की भावना प्रबल थी। ब्रिटिश शासकों द्वारा लोगों का आर्थिक-शोषण भी चरम पर था। देश के स्वाधीनता संग्राम के नेताओं द्वारा पूर्ण-स्वराज्य की मांग की जा रही थी। गोपालकृष्ण गोखले और लोकमान्य गंगाधर तिलक जैसे नेता देश के स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व कर रहे थे। इस काल के साहित्यकारों ने न सिर्फ देश की दुर्दशा का चित्रण किया, बल्कि देशवासियों को आजादी की प्राप्ति की प्रेरणा भी दी। राजनीतिक चेतना के साथ-साथ इस काल में भारत की आर्थिक चेतना भी विकसित हुई।

द्विवेदी जी का योगदान

सन् 1903 में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका के संपादन का भार संभाला। उन्होंने खड़ी बोली गद्य के स्वरूप को स्थिर किया और पत्रिका के माध्यम से रचनाकारों के एक बड़े समुदाय को खड़ी बोली में लिखने को प्रेरित किया। इस काल में निबंध, उपन्यास, कहानी, नाटक एवं समालोचना का अच्छा विकास हुआ। इस युग के निबंधकारों में महावीर प्रसाद द्विवेदी, माधव प्रसाद मिश्र, श्यामसुंदर दास, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, बालमुकंद गुप्त और अध्यापक पूर्णसिंह आदि उल्लेखनीय हैं। इनके निबंध गंभीर, ललित एवं विचारात्मक हैं, किशोरीलाल गोस्वामी और बाबू गोपाल राम गहमरी के उपन्यासों में मनोरंजन

और घटनाओं की रोचकता है। हिन्दी कहानी का वास्तविक विकास 'द्विवेदी युग' से ही शुरू हुआ। किशोरी लाल गोस्वामी की 'इंदुमती' कहानी को कुछ विद्वान् हिन्दी की पहली कहानी मानते हैं। अन्य कहानियों में बंग महिला की 'दुलाई वाली', रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय', जयशंकर प्रसाद की 'ग्राम' और चंद्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' आदि महत्त्वपूर्ण हैं। समालोचना के क्षेत्र में पद्मसिंह शर्मा उल्लेखनीय हैं। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', शिवनंदन सहाय तथा राय देवीप्रसाद पूर्ण द्वारा भी कुछ नाटक लिखे गए।

नाट्य साहित्य

'द्विवेदी युग' नाट्य साहित्य की दृष्टि से सबसे कम समृद्ध है। इस काल में मौलिक नाटकों के सृजन में कमी आई। ऐसा लगता है कि नाटकीय गतिविधि धीरे-धीरे काफी कम हो गई थीं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय में जो नाटक मंडलियाँ थीं, वे व्यावसायिक तो थीं नहीं, इसलिए समय के साथ वे काल के गाल में समा गईं। इस युग के प्रसिद्ध रंगकर्मी एवं उच्च कोटि के अभिनेता माधव शुक्ल ने अव्यावसायिक रंगमंच को फिर से जिन्दा करने की कोशिश की। बात 1908 की है, जब उन्होंने इलाहाबाद की रामलीला नाटक मंडली को झाड़-पोंछ कर सुरुचि सम्पन्न लोगों की पसंद लायक बनाया। यहाँ से कई नवजागरण का संदेश देने वाले नाटकों का मंचन हुआ। राष्ट्रीय संस्कृति और सामाजिक चेतना का संस्कार करने वाले नाटकों का रंगमंच पर अभिनय प्रस्तुत किया गया।

रचनाएँ

राधाकृष्णदास द्वारा लिखित 'राणाप्रताप' और माधव शुक्ल द्वारा स्वयं लिखित 'महाभारत' नाटकों के मंचन ने तो धूम ही मचा दी। इससे रंगमंच की दुनिया में एक नई हलचल मची। इससे प्रोत्साहित होकर कई रंगनाटक लिखे गए। माखनलाल चतुर्वेदी कृत 'कृष्णार्जुन युद्ध' (1918), बद्रीनाथ भट्ट कृत 'दुर्गावती', 'कुरुवनदहन' और 'वेनचरित', बलदेव प्रसाद मिश्र कृत 'प्रभास मिलन' इस समय के लिखे हुए बहुत ही प्रभावशाली नाटक थे।

नाट्य लेखन

इस युग के पौराणिक नाटकों में प्रमुख थे-

भगवान श्रीकृष्ण के चरित से संबंधित नाटक -

राधाचरण गोस्वामी कृत 'श्रीदामा' (1904), शिवनंदन सहाय कृत 'सुदामा' (1907), बनवारीलाल कृत 'कृष्णकथा' और 'कसवध' (1909)।

रामचरित संबंधी नाटक

रामनारायण मिश्र कृत 'जनक बाड़ा' (1906), गंगाप्रसाद कृत 'रामाभिषेक' (1910), गिरधरलाल कृत 'राम वनयात्रा' (1910), नारायण सहाय कृत 'रामलीला' (1911), रामगुलामलाल कृत 'धनुषयज्ञ लीला' (1912)।

पौराणिक पात्रों को लेकर लिखे गए नाटक-

महावीर सिंह कृत 'नल-दमयंती' (1905), गौरचरण गोस्वामी कृत 'अभिमन्यु बध' (1906), सुदर्शनाचार्य कृत 'अनर्घ नलचरित' (1906), बांकेबिहारी लाल कृत 'सावित्री नाटिका' (1908), बालकृष्ण भट्ट कृत 'वेणु संहार' (1909), लक्ष्मी प्रसाद कृत 'उर्वशी' (1910), हनुमंत सिंह कृत 'सती-चरित्र' (1910), शिवनंदन मिश्र कृत 'शकुंतला' (1911), जयशंकर प्रसाद कृत 'करुणालय' (1912), बद्रीनाथ भट्ट कृत 'कुरुवन-दहन' (1915), माधव धुक्ल कृत 'महाभारत पूर्वार्द्ध' (1916), हरिदास माणिक कृत 'पाण्डव-प्रताप' (1917), और माखनलाल चतुर्वेदी कृत 'कृष्णार्जुन युद्ध' (1918)।

इन नाटकों में चरित्रों के माध्यम से जनता को उपदेश देने का प्रयास किया गया है। नाटक कला का उपयुक्त विकास इनसे नहीं हुआ। अभिनय तत्त्व भी गौण ही है।

ऐतिहासिक नाटक

ऐतिहासिक नाटक में गंगाप्रसाद गुप्त कृत 'वीर जयमाल' (1903), वृंदावनलाल वर्मा कृत 'सेनापति उदल' (1909), बद्रीनाथ भट्ट कृत 'चंद्रगुप्त' (1915), कृष्णप्रकाश सिंह कृत 'पन्ना' (1915), हरिदास माणिक कृत 'संयोगिताहरण' (1915), जयशंकर प्रसाद कृत 'राज्य श्री' (1915) और परमेष्ठीदास जैन कृत 'वीर चूड़ावत सरदार' (1918)।

जयशंकर प्रसाद जी के नाटक को छोड़कर किसी में इतिहास का निर्माण नहीं हो सका।

सामाजिक नाटक

सामाजिक नाटक में प्रतापनारायण मिश्र कृत 'भारत दुर्दशा' (1902), भगवती प्रसाद कृत 'वृद्ध-विवाह' (1905), जीवानंद शर्मा कृत 'भारत विजय' (1906), कृष्णानंद जोशी कृत 'उन्नति कहां से होगी' (1915), मिश्र बंधु कृत 'नेत्रोन्मीलन' (1915)।

इन नाटकों में सामाजिक विकृतियों को उभारने की कोशिश की गई है। इनका लक्ष्य समाज सुधार है। किन्तु नाट्यकला की दृष्टि से इनका महत्त्व अधिक नहीं है।

रोमांचकारी नाटक

इस युग में रोमांचकारी नाटक भी लिखे गए। अलौकिक घटनाओं को केन्द्र में रखकर ये नाटक पारसी रंगमंच की शैली में लिखे गए। इसकी विषयवस्तु फारसी प्रेम कथाओं पर आधारित होती थी। कुछ रोमांचकारी नाटक पौराणिक कथाओं पर भी आधारित थे। इन नाटकों की शुरुआत 'कोरस' से होती थी। मुख्य कथा के समानान्तर एक प्रहसन भी चलता रहता था। यह दर्शकों को हंसाने के लिए होता था। इन नाटकों की भाषा उर्दू मिश्रित हुआ करती थी। बाद के दिनों में साधारण बोलचाल की भाषा का भी प्रयोग शुरू हो गया। इस श्रेणी के नाटकों की रचना में मुहम्मद मियां 'रौनक', सैयद मेंहदी हसन 'अहसान', नारायण प्रसाद 'बेताब', आगा मोहम्मद 'हश्र' और राधेश्याम कथावचक ने प्रमुख भूमि का निभाई।

प्रहसन नाटक

इस युग में पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, रोमांचकारी, आदि विषयों के अलावा प्रहसन नाटक भी लिखे गए। बद्रीनाथ भट्ट कृत 'चुंगी की उम्मीदवारी' (1912), गंगाप्रसाद श्रीवास्तव कृत 'उल्टफेर' (1918) और 'नोंक झोंक' (1918)।

अनुदित नाटक

अनुदित नाटक की श्रेणी में संस्कृत से सदानंद अवस्थी ने 'नागानंद' (1906), लाला सीताराम ने 'मृच्छकटिक' (1913), कविरत्न सत्यनारायण ने

'उत्तर रामचरित' किया। अंग्रेजी से शेक्सपियर के नाटकों का अनुवाद लाला सीताराम और चतुर्भुज औदीच्य ने किया। बंगला से ब्रजनंदन सहाय ने किया।

रामचन्द्र शुक्ल की विवेचना

'द्विवेदी युग' के नाटकों की विवेचना करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं- 'इन मौलिक रूपकों की सूची देखने से यह लक्षित हो जाता है कि नाटक की कथावस्तु के लिये लोगों का ध्यान अधिकतर ऐतिहासिक और पौराणिक प्रसंगों की ओर ही गया है। वर्तमान सामाजिक और पारिवारिक जीवन के विविध उलझे हुए पक्षों का सूक्ष्मता के साथ निरीक्षण करके उनके मार्मिक या अनूठे चित्र खड़ा करने वाली उद्‌भावना उनमें नहीं पाई जाती। चूंकि इस युग में भारतेन्दु से आगे बढ़कर शिल्प और संवेदना के स्तर पर कोई नया प्रयोग तो नहीं ही हुआ, इसलिए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी रंगमंच की स्थापना का जो काम शुरू किया था, वह आगे न बढ़ सका। बल्कि यो कहें कि इस युग में सृजन की दृष्टि से ह्रास ही हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि जनता की रुचि व्यावसायिक रंगमंचीय नाटकों की तरफ मुड़ गई।

प्रमुख कवि

इस युग के प्रसिद्ध कवियों में जिन्हें गिना जाता है, उनके नाम इस प्रकार हैं-

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी
अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
रामचरित उपाध्याय
जगन्नाथदास 'रत्नाकर'
गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'
श्रीधर पाठक
रामनरेश त्रिपाठी
मैथिलीशरण गुप्त
लोचन प्रसाद पांडेय
सियारामशरण गुप्त

विशेषताएँ

'द्विवेदी युग' की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

- अशिक्षा, गरीबी, अनाचार, अत्याचार आदि से छुटकारा दिलाने की कामना।
- देश प्रेम एवं राष्ट्रीयता का सन्देश।
- नारी के प्रति सहानुभूति की भावना।
- समाज सुधार के प्रयास।
- नैतिकता एवं आर्दशवाद की पुष्टि।
- सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् का विधान।
- मनोरम प्रकृति चित्रण।
- सरल, सुबोध एवं सरस खड़ी बोली में काव्य की रचना।

साहित्य या इतिहास में किसी कालखण्ड को व्यक्ति विशेष के नाम से अभिहित करना उस व्यक्ति के महत्त्व और उनकी देन को रेखांकित करना है। हिन्दी साहित्य को रूढ़ियों से स्वछन्दता, जड़ता से प्रगति औरश्रृंगारिकता से राष्ट्रीयता की तरफ उन्मुख करने में बीसवीं शताब्दी के प्रथम दो दशकों का बहुत महत्त्व है। इस कालखण्ड के पथ प्रदर्शक, विचारक, सम्पादक, साहित्यकार आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर इस कालखण्ड का नाम द्विवेदी युग उचित ही है।

भारतेन्दु के बाद पंद्रह वर्ष का समय सन् 1885 से 1900 खड़ी बोली हिन्दी के लिए संघर्ष का समय था। हिन्दी साहित्य में इस समय ब्रज भाषा-खड़ी बोली का संघर्ष चरम पर था। ब्रज भाषा के समर्थकों का मानना था कि खड़ी बोली काव्य के लिए उपयुक्त नहीं है, परन्तु खड़ी बोली के समर्थक खड़ी बोली के व्यवहार और संस्कार में लगे रहे।ऐसा मानने वालों की संख्या ज्यादा थी कि साहित्य में गद्य और पद्य की दो अलग-अलग भाषाएँ नहीं होनी चाहिए। ध्यातव्य है कि भारतेन्दु युग में गद्य की भाषा खड़ी बोली थी, जबकि पद्य की भाषा ब्रज भाषा। धीरे-धीरे यह विचार विकसित होने लगा था कि दोनों की भाषा एक होनी चाहिए। चूँकि खड़ी बोली का क्षेत्र व्यापक था, इसलिए खड़ी बोली को पद्य का भी माध्यम बनाने का प्रयास होना चाहिए।

द्विवेदी युग, खड़ी बोली और सरस्वती पत्रिका

खड़ी बोली और हिन्दी साहित्य के सौभाग्य से सन् 1903 में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती पत्रिका के सम्पादन का भार सँभाला। वे सन् 1920 तक श्रम और लगन के साथ इसका सम्पादन करते रहे। सरस्वती के सम्पादक के रूप में द्विवेदी जी ने खड़ी बोली के उत्थान के लिए जो प्रयास

किया, वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इनके प्रोत्साहन और मार्गदर्शन के फलस्वरूप कवियों और लेखकों की एक पीढ़ी का निर्माण हुआ। वे स्वयं कवि, निबन्धकार, आलोचक, अनुवादक तथा सम्पादक थे। उनके लिखे हुए मौलिक और अनुदित गद्य-पद्य ग्रन्थों की संख्या लगभग अस्सी है। खड़ी बोली को परिष्कृत कर उसके स्वरूप को स्थिरता प्रदान करने वालों में द्विवेदी जी अग्रगण्य हैं। रीतिकालीन श्रृंगारिक परम्परा और प्रवृतियों से हटकर नई अभिव्यंजना और अभिव्यक्ति की शुरुआत द्विवेदी जी के समय में हुई। अपने समकालीन रचनाकारों को खड़ी बोली में रचना के लिए वे निरन्तर प्रोत्साहित करते रहे।

भाषा-प्रयोग के क्षेत्र में, जो अराजकता और स्वछन्दता चल रही थी, द्विवेदी जी ने उस पर अंकुश लगाया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस कार्य की महत्ता का स्पष्ट रूप से प्रतिपादन किया है। उनके शब्दों में –"व्याकरण की शुद्धता और भाषा की सफाई के प्रवर्तक द्विवेदी जी ही थे। सरस्वती के सम्पादक के रूप में उन्होंने आई हुई पुस्तकों के भीतर व्याकरण और भाषा की अशुद्धियाँ दिखाकर लेखकों को बहुत कुछ सावधान कर दिया। यद्यपि कुछ हठी और अनाड़ी लेखक अपनी भूलों और गलतियों का समर्थन तरह-तरह की बातें बनाकर करते रहे, पर अधिकतर लेखकों ने लाभ उठाया और लिखते समय व्याकरण आदि का पूरा ध्यान रखने लगे" शुक्ल जी के अनुसार गद्य की भाषा पर द्विवेदी जी के इस शुभ प्रभाव का स्मरण तब तक बना रहेगा, जब तक भाषा के लिए शुद्धता आवश्यक समझी जाएगी।

सरस्वती के माध्यम से द्विवदी जी ने अपने विचारों एवं सिद्धान्तों को हिन्दी समाज के समक्ष बड़ी योग्यता और दृढ़ता के साथ प्रस्तुत किया। वस्तुतः द्विवेदी युग के आरम्भ में खड़ी बोली अनगढ़, शुष्क और अस्थिर रूप में थी। अनवरत प्रयास के फलस्वरूप धीरे-धीरे खड़ी बोली का स्वरूप स्थिर, निश्चति सुघड़ और मधुर बना। गद्य और पद्य की भाषा का एकीकरण हुआ। खड़ी बोली गद्य और पद्य दोनों में स्थापित हुई। डॉ. नगेन्द्र द्वारा की गई यह टिपण्णी सटीक है, "असल में आलोच्यकाल (द्विवेदी युग) का इतिहास खड़ी बोली के तुतलाने से लेकर उसके स्फीत वाग्धारा तक पहुँचने का इतिहास है।"

द्विवेदी युग में न सिर्फ भाषा की एकरूपता स्थापित हुई, बल्कि विषयों का विस्तार भी हुआ। द्विवेदी जी साहित्य को 'ज्ञानराशि का संचित कोष' मानते थे। सरस्वती बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक चरण का विश्वकोश था। आचार्य द्विवेदी जी की सन् 1908 में प्रकाशित पुस्तक सम्पत्तिशास्त्र भारत के

सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक यथार्थ का अभूतपूर्व चित्र प्रस्तुत करती है। साहित्य में विषयों के विस्तार के साथ ही ज्ञान क्षेत्र का विस्तार हुआ। खड़ी बोली के पाठकों की संख्या बढ़ी जिससे हिन्दी को व्यापक प्रतिष्ठा मिली। द्विवेदी जी के प्रयासों से न सिर्फ भाषा की एकरूपता हुई, बल्कि विषयों का भी विस्तार हुआ। भाषा और साहित्य के साथ-साथ उन्होंने विज्ञान, दर्शन, समाज आदि विषयों पर भी लेख लिखवाए। देश की पराधीनता, किसानों और मजदूरों की विपन्नता, विधवाओं की दुर्दशा, शोषितों पर होने वाले अत्याचार, महाजन, जमीनदार, पुलिस आदि द्वारा होने वाले अत्याचार साहित्यिक विधाओं के विषय बने।

खड़ी बोली के विकास में द्विवेदी युग का महत्त्वपूर्ण योगदान यह है कि द्विवेदी जी ने विभिन भाषाओं – संस्कृत, अंग्रेजी, बंगला से हिन्दी में अनुवाद किए और करवाए। खड़ी बोली हिन्दी में विषयों के विस्तार के साथ शैली की अनेकरूपता का भी विकास हुआ। इस युग में परिमार्जित शैली का विकास हुआ। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे पहचानते हुए लिखा–"ऐसे लोगों की संख्या कुछ बढ़ी, जिनकी शैली में उनकी निज की शिष्टता रहती थी, जिनकी लिखावट को परखकर लोग यह कह सकते थे कि यह उन्हीं की है। साथ ही वाक्य विन्यास से अधिक सफाई और व्यवस्था आई। विराम चिह्नों का आवश्यक प्रयोग होने लगा। कुछ लेखकों की कृपा से हिन्दी की अर्थोद्घाटिनी शक्ति की अच्छी वृद्धि और अभिव्यंजन प्रणाली का भी अच्छा प्रसार हुआ। सघन और गुम्फित विचार सूत्रों को व्यक्त करने वाली तथा सूक्ष्म और गूढ़ भावों को झलकाने वाली भाषा हिन्दी साहित्य को कुछ-कुछ प्राप्त होने लगी।" द्विवेदी युग में खड़ी बोली हिन्दी साहित्य की मुख्य भाषा बन गई।

द्विवेदी युग में हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ

द्विवेदी युग की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि खड़ी बोली हिन्दी गद्य और पद्य दोनों की भाषा बन गई। भारतेन्दु युग में खड़ी बोली हिन्दी कविता की शुरुआत हो गई थी, परन्तु साहित्यिक स्तर पर उसे स्वीकृति नहीं मिली। श्रीधर पाठक पहले ब्रज भाषा में कविता लिखते थे किन्तु खड़ी बोली आन्दोलन के समय उन्होंने खड़ी बोली में प्रथम कविता एकान्तवासी योगी शीर्षक से सन् 1983 में लिखी। इसके बाद उन्होंने खड़ी बोली की परिमार्जित शैली अपनाकर अनेक ररचनाएँ की। खड़ी बोली के इस आदिकवि की महावीर प्रसाद द्विवेदी

ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। कविता के लिएशृंगार, प्रेम और युवा अवस्था की अल्हड़ रंगीली कविताओं का बहिष्कार कर राष्ट्रप्रेम, राष्ट्रीयता, समाज सुधार, शिक्षा, नैतिकता, आचरण की मर्यादा आदि विषयों को स्थान देना और साहित्यकारों को प्रोत्साहित करना द्विवेदी जी का लक्ष्य बन गया था। अनेक कवियों ने ब्रज भाषा छोड़कर खड़ी बोली अपनाई।

द्विवेदी युग की कविता में रीतिवाद का विरोध है। रीतिकालीन जड़ संस्कारों से द्विवेदीयुगीन कविता मुक्त हुई। श्रीधर पाठक खड़ी बोली के प्रथम कवि हैं, जिनमें काव्यगत स्वच्छन्दता का दर्शन हुआ। सन् 1900 में उन्होंने गुणवन्त हेमन्त शीर्षक से कविता लिखी। उन्होंने छन्दों को नए साँचे में ढाला। द्विवेदी युग में प्रबन्ध काव्य भी पर्याप्त संख्या में लिखे गए। पं. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' द्वारा रचित प्रियप्रवास खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य है। यह काव्य प्रायः भावव्यंजनात्मक और वर्णनात्मक है। खड़ी बोली को काव्योपयुक्त बनाने में हरिऔध का नाम अग्रगण्य है। यशोदा का सहृदय सम्बन्ध विरह दृष्टव्य है–

प्रिय पति वह मेरा प्राण प्यारा कहाँ है?
दुःख जलनिधि डूबी का सहारा कहाँ है?

हरिऔध बोलचाल की मुहावरेदार जबान में लिखते थे। चोखे चौपदे ऐसा ही संग्रह है। एक रोचक उदाहरण दृष्टव्य है–

क्यों पले पीसकर किसी को तू !
है पॉलिसी बहुत बुरी तेरी।
हम रहे चाहते पटाना ही।
पेट तुझसे पटी नहीं मेरी।

महावीर प्रसाद द्विवेदी हिन्दी में कवि के रूप में प्रसिद्ध नहीं हैं, लेकिन खड़ी बोली में उन्होंने भी कविताएँ लिखी हैं। द्विवेदी जी बोलचाल की भाषा के हिमायती थें, अतः उनकी कविता की भाषा भी गद्यमय है।

मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी युग में खड़ी बोली के सबसे महत्त्वपूर्ण कवि हैं। इनकी कविताओं से खड़ी बोली हिन्दी को काव्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठित होने में अभूतपूर्व सहायता मिली है। उनके द्वारा रचित भारत-भारती युगीन राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति का मूर्त रूप था। भारत-भारती (1912) की पंक्तियाँ हिन्दीभाषी क्षेत्र के बहुत लोगों को कण्ठस्थ थीं। भारत-भारती युगवाणी का मूर्तरूप है। इसमें भारत के अतीत, वर्तमान और भविष्य का चित्र खींचा गया है।

हम कौन थे, क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएँ सभी।

मैथिलीशरण गुप्त ने जयद्रथ वध, पंचवटी, साकेत और यशोधरा जैसे अनेक महत्त्वपूर्ण और प्रसिद्ध काव्यग्रन्थों की रचना की। मुक्तक, गीत और गेयपद भी लिखे। मेघनाद वध का अनुवाद उन्होंने अतुकान्त कविता में किया। राय देवीप्रसाद पूर्ण की एक लम्बी कविता है वसन्त वियोग। इसमें भारतभूमि की कल्पना एक उद्यान के रूप में की गई है।

रामनरेश त्रिपाठी इस युग के कवियों में महत्त्वपूर्ण हैं। उनकी कविता देशभक्ति की भावना से ओत-प्रोत है। उनकी भाषा अत्यन्त व्यवस्थित है। उनके प्रसिद्ध काव्यग्रन्थ हैं–मिलन, पथिक और स्वप्न। इस युग के दूसरे कवियों में रामचरित उपाध्याय, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', पं. लोचनप्रसाद पांडेय, पं. गिरिधर शर्मा 'नवरत्न', पं. नाथूराम शर्मा शंकर, पं. रूपनारायण पांडेय आदि का नाम लिया जा सकता है।

आधुनिक हिन्दी कहानी का विकास द्विवेदी युग में ही हुआ। हिन्दी कहानी का विकास द्विवेदी युग और सरस्वती पत्रिका से अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ है। पं. किशोरीलाल गोस्वामी की कहानी इन्दुमती सरस्वती में सन् 1900 में प्रकाशित हुई। हिन्दी की प्रथम आधुनिक कहानी को लेकर विवाद है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस सन्दर्भ में सरस्वती में सन् 1900 से 1907 तक प्रकाशित छह कहानियों का उल्लेख किया है। इनमें इन्दुमती के अलावा किशोरीलाल गोस्वामी की दूसरी कहानी गुलबहार (1902), भगवान दास की प्लेग की चुड़ैल (1902), रामचन्द्र शुक्ल की ग्यारह वर्ष का समय (1903), गिरिजादत्त वाजपेयी की पण्डित और पण्डितानी (1903) और बंग महिला (राजेन्द्रबाला घोष) की दुलाई वाली (1907) शामिल हैं।

इस सन्दर्भ में सन् 1901 में प्रकाशित माधव राव स्प्रे की कहानी एक टोकरी भर मिट्टी उल्लेखनीय है। एक टोकरी भर मिट्टी कहानी को कुछ विद्वानों ने हिन्दी कहानी की यथार्थवादी परम्परा के सूत्रपात का श्रेय दिया है। वस्तुत: बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक की कहानियों में चमत्कार की प्रधानता है। इनमें रचनात्मक प्रौढ़ता का अभाव है, लेकिन आदर्श और बलिदान के आवरण में भी इनमें अपने समय की आहट है। पण्डित और पण्डितानी कहानी के केन्द्र में अनमेल विवाह की समस्या है। दुलाईवाली में बंगाल विभाजन की पृष्ठभूमि में स्वदेशी आन्दोलन की गूँज है।

द्विवेदी युग के आरम्भिक दशक में धनपत राय के नाम से प्रेमचन्द उर्दू में कहानियाँ लिख रहे थे। उर्दू कहानियों का उनका पहला संग्रह सोजे वतन अंग्रेजी सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया था। हिन्दी कहानी के विकास में बीसवीं सदी के दूसरे दशक का अधिक महत्त्व है। आगे चलकर कहानी की जिन दो समानान्तर धाराओं सामाजिक यथार्थवादी और वैयक्तिक भाववादी का विकास हुआ उसकी शुरुआत यहीं से होती है। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने प्रेम को वर्जित क्षेत्र मानकर साहित्य में प्रायः नैतिक और सामाजिक मूल्यों को प्रोत्साहन दिया। नीतिगत भेद के चलते सन् 1909 में काशी से इन्दु प्रत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ। इस पर जयशंकर प्रसाद का प्रभाव था। सन् 1911 में जयशंकर प्रसाद की कहानी ग्राम इन्दु में प्रकाशित हुई। विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक की पहली कहानी रक्षाबन्धन सन् 1913 में सरस्वती में प्रकाशित हुई। राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह की प्रसिद्ध कहानी कानों में कंगना सन् 1913 इन्दु में प्रकाशित हुई।

सन् 1915 हिन्दी कहानी के विकास में ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की महत्त्वपूर्ण कहानी 'उसने कहा था' सन् 1915 में सरस्वती में प्रकाशित हुई। इसी वर्ष प्रेमचन्द सरस्वती में सौत कहानी के प्रकाशन के साथ उर्दू से हिन्दी में आए। उसने कहा था हिन्दी कहानी को आरम्भ में ही ऊँचाई पर खड़ा कर दिया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे अद्वितीय कहानी की संज्ञा दी। प्रथम विश्वयुद्ध (1914–18) की पृष्ठभूमि में लिखी गई इस कहानी में निहित त्यागमय प्रेम का आदर्श भारतीय संस्कृति की उदात्तता के अनुकूल है। कहानी के नायक लहना सिंह ने प्रेम और कर्त्तव्यबोध के चलते जान की बाजी लगा दी। हिन्दी कहानी में शिल्प की दृष्टि से पहली बार इस कहानी में फ्लैशबैक का प्रौढ़-कुशल प्रयोग किया गया। मधुरेश के अनुसार उसने कहा था हिन्दी की पहली कहानी है जिसने शिल्प विधान की दृष्टि से हिन्दी कहानी को एक झटके में ही प्रौढ़ बना दिया।" गुलेरी की दो अन्य महत्त्वपूर्ण कहानियाँ हैं– बुद्धू का काँटा और सुखमय जीवन।

राधिकारमण सिंह की कहानी माँ वैधव्य और मातृत्व को संवेदनशीलता के साथ व्यक्त करती है। हिन्दी कहानी को आरम्भिक काल में ही प्रेमचन्द के रूप में एक बहुमूल्य रत्न मिला। सन् 1916 में सरस्वती में प्रकाशित प्रेमचन्द की कहानी पंचपरमेश्वर को अभूतपूर्व लोकप्रियता प्राप्त हुई। इसमें ग्रामीण जीवन की सहृदयता और काइयाँपन व्यक्त हुआ है। इसमें शिल्पगत नवीनता नहीं है, लेकिन मनोवैज्ञानिकता का पुट है।

हिन्दी उपन्यास की शुरुआत भारतेन्दु युग में ही हो गई थी किन्तु, इसकी अविछिन्न परम्परा द्विवेदी युग से प्रारम्भ हुई। द्विवेदी युग के उपन्यासों में मध्यकालीन कथाओं का प्रभाव ज्यादा है। इस काल में मौलिक उपन्यासों की रचना भारतेन्दु युग की तर्ज पर ही हुई। मौलिक उपन्यासों के अतिरिक्त द्विवेदी युग में दूसरी भाषाओं के उपन्यासों का अनुवाद हिन्दी में हुआ। शरतचन्द्र के उपन्यास हिन्दी पाठकों में लोकप्रिय हो चुके थे।बांग्ला, उर्दू और मराठी के साथ अंग्रेजी के भी कई उपन्यासों के अनुवाद हिन्दी में हुए।

पण्डित किशोरीलाल गोस्वामी और गोपालराम गहमरी द्विवेदी युग के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपन्यासकार हैं। गोस्वामी जी उन्नीसवीं शती के अन्तिम दशक से ही उपन्यास लिखते आ रहे थे। इनके उपन्यासों में यौन-भावना की प्रधानता है। इनमें वासना के चटकीले रंग के साथ कुछ सामाजिक पाखण्ड का भी उद्घाटन है। इनकी भाषा सहज है, लेकिन ऐतिहासिक उपन्यासों में कालदोष है। गोपालराम गहमरी ने जासूसी उपन्यास लिखे। पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' और श्री लज्जाराम मेहता ने भी उपन्यास लिखे। किशोरीलाल गोस्वामी ने अपने उपन्यासों के प्रकाशन के लिए सन् 1898 से उपन्यास नामक मासिक पत्र निकालना शुरू कर दिया था।

भारतेन्दु युग में नाटकों के प्रभावपूर्ण पुनर्प्रचलन को आचार्य शुक्ल ने विलक्षण माना था। यह भी विलक्षण बात है कि भारतेन्दु युग में प्रचलित और प्रतिष्ठित नाटक परम्परा द्विवेदी युग में उतने महत्त्वपूर्ण ढंग से प्रचलित नहीं हुई।भारतेन्दु युग नाटकों की दृष्टि से जितना अधिक समृद्ध है, द्विवेदी युग उतना कम समृद्ध है। द्विवेदी युग में मौलिक नाटकों का अभाव पाया जाता है। इस युग के नाटक संख्या की दृष्टि से नहीं, महत्त्व की दृष्टि से कमजोर हैं।

द्विवेदी युग के मौलिक नाटककारों में किशोरीलाल गोस्वामी, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' शिवनन्दन सहाय और रायदेवी प्रसाद पूर्ण के नाम उल्लेखनीय हैं, परन्तु ये मूलतः नाटककार नहीं हैं। ये सभी रचनाकार हिन्दी साहित्य में मूलतः दूसरी विधाओं के लिए ख्यात हैं। पण्डित किशोरीलाल गोस्वामी द्वारा रचित नाटक चौपट चपेट एक प्रहसन है। गोस्वामी द्वारा रचित नाटक मयंक मंजरी एक सामान्य कोटि का नाटक है। हरिऔध ने रुक्मिणी परिणय और प्रद्युम्न विजय व्यायोग नामक नाटक लिखा।

विभिन्न भाषाओं से हिन्दी में नाटकों का अनुवाद द्विवेदी युग में बड़े पैमाने पर हुआ। संस्कृत, बांग्ला के साथ अंग्रेजी के महत्त्वपूर्ण नाटकों के अनुवाद हिन्दी

में हुए। शेक्सपियर के नाटक रोमियो जूलियट, मैकबेथ और हैमलेट का हिन्दी में अनुवाद हुआ। संस्कृत के नाटक मृच्छकटिकम्, उत्तररामचरित, मालतीमाधव और मालविकाग्निमित्रम् का हिन्दी में अनुवाद हुआ।

द्विवेदी युग की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण गद्य-विधा निबन्ध है। सरस्वती के सम्पादन के साथ द्विवेदी जी ने पाठकों की जानकारी के लिए अनेक विषयों पर लेख लिखवाकर प्रकाशित किए। इस युग के साहित्य में वैचारिकता का विकास हुआ। विविध विषयों पर लिखे गए गम्भीर लेखों का वैचारिकता से अभिन्न संबंध था। वैचारिकता का सम्बन्ध निबन्ध से भी है। यद्यपि निबन्ध गम्भीर लेखों से कई मायने में भिन्न भी हैं। निबन्ध में व्यक्तित्त्व की जीवन्तता और शैली का अनूठापन दृष्टिगोचर होता है। द्विवेदी युग में गम्भीर और ललित दोनों प्रकार के निबन्ध लिखे गए, लेकिन विचारपरक निबन्ध अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। अंग्रेजी के लेखक बेकन के निबन्धों के अनुवाद हिन्दी में बेकन विचार रत्नावली के नाम से स्वयं द्विवेदी जी ने किया था। द्विवेदी जी के निबन्धों का तेवर नियामक और व्यवस्थापक है, चाहे कवि और कविता पर लिख रहे हों या क्या हिन्दी नाम की कोई भाषा ही नहीं। द्विवेदी जी के निबन्धों में कलात्मकता की बजाय बात समझाकर कहने की प्रवृत्ति अधिक है। वस्तुतः द्विवेदी जी का उद्देश्य विविध विषयों के ज्ञान को समेटकर हिन्दी पाठकों तक पहुँचा देना था। निबन्धों के माध्यम से द्विवेदी जी हिन्दी साहित्य को ज्ञान समृद्ध करके युगीन आवश्यकता की पूर्ति की दिशा में महनीय प्रयास कर रहे थे।

बालमुकुन्द गुप्त ने सामयिक और राजनीतिक परिस्थितियों को लेकर कई व्यंग्यात्मक निबन्ध लिखे, जिनमें शिवशम्भू का चिट्ठा अत्यन्त लोकप्रिय और महत्त्वपूर्ण हैं। इनकी भाषा शैली ओजपूर्ण, तीखी, चुटीली, व्यंग्यपूर्ण और प्रवाहपूर्ण है। इनकी शैली भारतेन्दुयुगीन लेखकों की शैली के निकट है। श्यामसुन्दरदास ने प्रायः विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम को ध्यान में रखकर निबन्ध लिखा। इनके निबन्ध उस समय की बड़ी आवश्यकता की पूर्ति करते थे। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के निबन्धों में प्राचीनता और नवीनता का संगम दृष्टिगोचर होता है। इनका दृष्टिकोण समाजशास्त्रीय है। इनके निबन्धों में प्रसंग-गर्भत्व के साथ व्यंग्य-विनोद का रंग भी है। कछुआ धरम और मारेसि मोहि कुठाँव इनके प्रसिद्ध निबन्ध हैं। सरदार पूर्ण सिंह के निबन्धों में विचारों और भावों को एक अनूठे ढंग से मिश्रित करने वाली एक नई शैली मिलती है। इनके निबन्धों में आचरण की सभ्यता, मजदूरी और प्रेम, सच्ची वीरता आदि उल्लेखनीय हैं।

मजदूरी और प्रेम में व्यक्त श्रम का सौन्दर्य आधुनिक सौन्दर्य-बोध का द्योतक है।

रामचन्द्र शुक्ल, द्विवेदी युग के अन्यतम निबन्धकार हैं। यद्यपि रामचन्द्र शुक्ल के निबन्धों का उच्चतर विकास द्विवेदी युग के बाद हुआ, लेकिन उनके अनेक महत्त्वपूर्ण निबन्धों का रचनाकाल द्विवेदी युग ही है। शुक्ल जी का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण निबन्ध कविता क्या है पहले-पहले सन् 1909 में प्रकाशित हुआ। शुक्ल जी के अनेक मनोवैज्ञानिक निबन्ध, जैसे–श्रद्धा-भक्ति, करुणा, लोभ और प्रीति आदि सन् 1912 से 1920 के बीच नागरी प्रचारिणी सभा की पत्रिका में प्रकाशित हुए थे। द्विवेदी युग में वर्णनात्मक, भावात्मक, विवरणात्मक, कथात्मक आदि सभी शैलियों में निबन्ध लिखे गए। इसमें सन्देह नहीं की आधुनिक युग की नवीन चेतना विचारात्मकता के रूप में हिन्दी साहित्य में निबन्धों के माध्यम से न सिर्फ प्रविष्ट हुई बल्कि उसने हिन्दी साहित्य को वैचारिकता से समृद्ध करके हिन्दी जाति के लोगों की चेतना का विस्तार भी किया। इस दृष्टि से द्विवेदी युगीन निबन्ध साहित्य का ऐतिहासिक योगदान बना रहेगा।

युगीन वैचारिकता के दबाव से हिन्दी में न सिर्फ निबन्ध साहित्य समृद्ध हुआ, बल्कि आलोचना का क्षेत्र भी मजबूत हुआ। द्विवेदीयुगीन आलोचना में रीतिवादी और आधुनिक प्रवृत्तियों में द्वन्द्व है। शास्त्रीय आलोचना रीतिवादी पैमानों यथा नायिका भेद, अलंकार आदि की दृष्टि से साहित्य की परख करती थी। रीति विरोधी आलोचना ज्ञान-विज्ञान के आलोक में विकसित नए जीवन मूल्यों के मापदण्ड पर साहित्य का मूल्यांकन करती थी। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपनी आलोचना से हिन्दी रचनाकारों को नवीन युग के अनुरूप वस्तु और रूप के प्रयोग की प्रेरणा दी। उन्होंने साहित्य, मुख्यत: कविता को युगानुरूप स्थापित करने का प्रयास किया। उन्होंने कविता को केवल विलास की सामग्री नहीं माना। उन्होंने कहा–"कविता यदि यथार्थ में कविता है तो सम्भव नहीं कि उसे सुनकर कुछ असर न हो।" (हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, विश्वनाथ त्रिपाठी, पृष्ठ-87) उन्होंने बुरे साहित्य के नुकसान भी बताए।

कविता के रूप पक्ष और भाव पक्ष के सन्दर्भ में द्विवेदी जी की दृष्टि आधुनिक थी। उन्होंने तुक और अनुप्रास को कविता के लिए अनिवार्य नहीं माना। उनके अनुसार कविता गद्य और पद्य दोनों में हो सकती है। यह अपने आप में एक क्रान्तिकारी विचार है। रीतिवादी साहित्य का विरोध करने के लिए उन्होंने नायिका भेद, अलंकार और ब्रज भाषा में काव्यरचना का विरोध किया। उन्होंने

साहित्य के लिए सामाजिक हित, यथार्थ चित्रण, प्रकृति-सौन्दर्य और मानव-मनोविज्ञान को उचित विषय बताया। हिन्दी साहित्य के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आलोचक माने जाने वाले आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने विचारात्मक लेखन की शुरुआत द्विवेदी युग में ही की थी। उनका साहित्य शीर्षक अनुदित निबन्ध सन् 1904 में सरस्वती में छपा था, किन्तु उनके आलोचनात्मक ग्रन्थ बाद में प्रकाशित हुए।

पुस्तक समीक्षा का सूत्रपात भारतेन्दु युग में हो चुका था। किसी एक ही रचनाकार का गुण-दोष दिखाने के लिए हिन्दी आलोचना की पहली पुस्तक महावीर प्रसाद द्विवेदी कृत हिन्दी कालिदास की आलोचना है। द्विवेदी जी ने कालिदास की निरंकुशता पर भी गम्भीर विचार किया। द्विवेदी युग में हिन्दी आलोचना के सामान्यतः पाँच रूप मिलते हैं। शास्त्रीय आलोचना, तुलनात्मक आलोचना, अनुसन्धानपरक आलोचना, परिचयात्मक आलोचना तथा व्याख्यात्मक आलोचना। मिश्रबन्धुओं ने शृंगारी कवि देव को ऊँचा स्थान प्रदान करते हुए हिन्दी नवरत्न में सूर-तुलसी को समकक्ष रखा तो श्रीधर पाठक की खड़ी बोली की नूतन स्वच्छन्द कविताओं का स्वागत भी किया।

तुलनात्मक आलोचना का रोचक रूप द्विवेदी युग में दिखाई पड़ता है। मिश्रबन्धुओं के जवाब में लाला भगवानदीन ने बिहारी और देव लिखकर बिहारी को देव से बड़ा कवि सिद्ध किया। इस विवाद में पं.पद्मसिंह शर्मा ने भी हिस्सा लेकर अपने ज्ञान और अनुभव के आधार पर तुलनात्मक आलोचना को एक ऊँचाई प्रदान की। इस युग में अनुसन्धानपरक आलोचना का विकास नागरी प्रचारिणी पत्रिका (1897) के प्रकाशन से हुआ। परिचयात्मक आलोचनाएँ सरस्वती में प्रकाशित हुई, जो प्रायः स्वयं द्विवेदी जी द्वारा लिखी गई थीं।

रीतिवादी आलोचक खड़ी बोली में रचित कविताओं को व्यर्थ और नीरस कहते थे। लाला भगवानदीन को भारत-भारती और जयद्रथ वध दोषपूर्ण लगे। पद्मसिंह शर्मा भी खड़ी बोली काव्य को नीरस और कर्णकटु कहते थे। द्विवेदी युग में परिवर्तन ऐसा हुआ कि ब्रज भाषा के साथ भाषा शब्द जुड़ा है, लेकिन वह बोली बन गई, जबकि खड़ी बोली जिसके साथ बोली लगा है वह भाषा बन गई। द्विवेदी युग में खड़ी बोली हिन्दी का पर्याय हो गई।

2

महावीर प्रसाद द्विवेदी

महावीर प्रसाद द्विवेदी हिन्दी गद्य साहित्य के महान् साहित्यकार, पत्रकार एवं युगविधायक हैं।

जीवन परिचय

महावीर प्रसाद द्विवेदी का जन्म सन् 1864 ई. में उत्तर प्रदेश के रायबरेली जिले के दौलतपुर गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम रामसहाय द्विवेदी था। कहा जाता है कि उन्हें महावीर का इष्ट था, इसीलिए उन्होंने अपने पुत्र का नाम महावीर सहाय रखा।

शिक्षा

महावीर प्रसाद द्विवेदी जी की प्रारम्भिक शिक्षा गाँव की पाठशाला में ही हुई। प्रधानाध्यापक ने भूल से इनका नाम महावीर प्रसाद लिख दिया था। हिन्दी साहित्य में यह भूल स्थायी बन गयी। तेरह वर्ष की अवस्था में अंग्रेजी पढ़ने के लिए यह रायबरेली के जिला स्कूल में भर्ती हुए। यहाँ संस्कृत के अभाव में इनको वैकल्पिक विषय फारसी लेना पड़ा। इन्होंने इस स्कूल में ज्यों-त्यों एक वर्ष काटा। उसके बाद कुछ दिनों तक उन्नाव जिले के 'रनजीत पुरवा स्कूल' में और कुछ दिनों तक फतेहपुर में पढ़ने के बाद यह पिता के पास बम्बई चले गए। बम्बई में इन्होंने संस्कृत, गुजराती, मराठी और अंग्रेजी का अभ्यास किया।

कार्यक्षेत्र

महावीर प्रसाद द्विवेदी जी की उत्कृष्ट ज्ञान-पिपासा कभी तृप्त न हुई, किन्तु जीविका के लिए इन्होंने रेलवे में नौकरी कर ली। कुछ दिनों तक नागपुर और अजमेर में कार्य करने के बाद यह पुनः बम्बई लौट आए। यहाँ पर इन्होंने तार देने की विधि सीखी और रेलवे में सिगनलर हो गए। रेलवे में विभिन्न पदों पर कार्य करने के बाद अन्ततः यह झाँसी में डिस्ट्रिक्ट सुपरिण्टेंडेंट के ऑफिस में चीफ क्लर्क हो गए। पाँच वर्ष बाद उच्चाधिकारी से न पटने के कारण इन्होंने नौकरी से इस्तीफा दे दिया। इनकी साहित्य साधना का क्रम सरकारी नौकरी के नीरस वातावरण में भी चल रहा था और इस अवधि में इनके संस्कृत ग्रन्थों के कई अनुवाद और कुछ आलोचनाएँ प्रकाश में आ चुकी थीं। सन 1903 ई. में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' का सम्पादन स्वीकार किया। 'सरस्वती' सम्पादक के रूप में इन्होंने हिन्दी के उत्थान के लिए जो कुछ किया, उस पर कोई साहित्य गर्व कर सकता है। 1920 ई. तक गुरुतर दायित्व इन्होंने निष्ठापूर्वक निभाया। 'सरस्वती' से अलग होने पर जीवन के अन्तिम अठारह वर्ष इन्होंने गाँव के नीरस वातावरण में व्यतीत किए। ये वर्ष बड़ी कठिनाई में बीते।

व्यक्तित्त्व

महावीर प्रसाद द्विवेदी के कृतित्त्व से अधिक महिमामय उनका व्यक्तित्त्व है। आस्तिकता, कर्त्तव्यपरायणता, न्यायनिष्ठा, आत्मसंयम, परहित-कातरता और लोक-संग्रह भारतीय नैतिकता के शाश्वत विधान हैं। यह नैतिकता के मूर्तिमान प्रतीक थे। इनके विचारों और कथनों के पीछे इनके व्यक्तित्त्व की गरिमा भी कार्य करती थी। वह युग ही नैतिक मूल्यों के आग्रह का था। साहित्य के क्षेत्र में सुधारवादी प्रवृत्तियों का प्रवेश नैतिक दृष्टिकोण की प्रधानता के कारण ही हो रहा था। भाषा-परिमार्जन के मूलों में भी यही दृष्टिकोण कार्य कर रहा था। इनका कृतित्त्व श्लाय है तो इनका व्यक्तित्त्व पूज्य। प्राचीनता की उपेक्षा न करते हुए भी इन्होंने नवीनता को प्रश्रय दिया था। 'भारत-भारती' के प्रकाशन पर इन्होंने लिखा था- "यह काव्य वर्तमान हिन्दी-साहित्य में युगान्तर उत्पन्न करने वाला है"। इस युगान्तर मूल में इनका ही व्यक्तित्त्व कार्य कर रहा था। द्विवेदी जी ने अनन्त आकाश और अनन्त पृथ्वी के सभी उपकरणों को काव्य-विषय घोषित करके इसी युगान्तर की सूचना दी थी। यह नवयुग के विधायक आचार्य थे। उस युग का बड़े से बड़ा साहित्यकार आपके प्रसाद की ही कामना करता था। सन् 1903

ई. से 1925 ई. तक (लगभग 22 वर्ष की अवधि में) द्विवेदी जी ने हिन्दी-साहित्य का नेतृत्व किया।

आलोचक

आलोचक के रूप में 'रीति' के स्थान पर इन्होंने उपादेयता, लोक-हित, उद्देश्य की गम्भीरता, शैली की नवीनता और निर्दोषिता को काव्योत्कृष्टता की कसौटी के रूप में प्रतिष्ठित किया। इनकी आलोचनाओं से लोक-रुचि का परिष्कार हुआ। नूतन काव्य विवेक जागृत हुआ। सम्पादक के रूप में इन्होंने निरन्तर पाठकों का हित चिन्तन किया। इन्होंने नवीन लेखकों और कवियों को प्रोत्साहित किया। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त इन्हें अपना गुरु मानते हैं। गुप्त जी का कहना है कि "मेरी उल्टी-सीधी प्रारम्भिक रचनाओं का पूर्ण शोधन करके उन्हें 'सरस्वती' में प्रकाशित करना और पत्र द्वारा मेरे उत्साह को बढ़ाना द्विवेदी महाराज का ही काम था"। इन्होंने पत्रिका को निर्दोष, पूर्ण, सरस, उपयोगी और नियमित बनाया। अनुवादक के रूप में इन्होंने भाषा की प्रांजलता और मूल भाषा की रक्षा को सर्वाधिक महत्त्व दिया।

मूल्यांकन

महावीर प्रसाद द्विवेदी

हिन्दी साहित्य में महावीर प्रसाद द्विवेदी का मूल्यांकन तत्कालीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में ही किया जा सकता है। वह समय हिन्दी के कलात्मक विकास का नहीं, हिन्दी के अभावों की पूर्ति का था। इन्होंने ज्ञान के विविध क्षेत्रों- इतिहास, अर्थशास्त्र, विज्ञान, पुरातत्त्व, चिकित्सा, राजनीति, जीवनी आदि से सामग्री लेकर हिन्दी के अभावों की पूर्ति की। हिन्दी गद्य को माँजने-सँवारने और परिष्कृत करने में यह आजीवन संलग्न रहे। यहाँ तक की इन्होंने अपना भी परिष्कार किया। हिन्दी गद्य और पद्य की भाषा एक- करने के लिए (खड़ीबोली के प्रचार-प्रसार के लिए) प्रबल आन्दोलन किया। हिन्दी गद्य की अनेक विधाओं को समुन्नत किया। इसके लिए इनको अंग्रेजी, मराठी, गुजराती और बंगला आदि भाषाओं में प्रकाशित श्रेष्ठ कृतियों का बराबर अनुशीलन करना पड़ता था। निबन्धकार, आलोचक, अनुवादक और सम्पादक के रूप में इन्होंने अपना पथ स्वयं प्रशस्त किया था। निबन्धकार द्विवेदी के सामने सदैव पाठकों के

ज्ञान-वर्द्धन का दृष्टिकोण प्रधान रहा, इसीलिए विषय-वैविध्य, सरलता और उपदेशात्मकता उनके निबन्धों की प्रमुख विशेषताएँ बन गयीं।

कृतियाँ

महावीर प्रसाद द्विवेदी की साहित्यिक देन कम नहीं है। इनके मौलिक और अनुदित पद्य और गद्य ग्रन्थों की कुल संख्या अस्सी से ऊपर है। गद्य में इनकी 14 अनुदित और 50 मौलिक कृतियाँ प्राप्त हैं। कविता की ओर महावीर प्रसाद द्विवेदी जी की विशेष प्रवृत्ति नहीं थी। इस क्षेत्र में इनकी अनुदित कृतियाँ, जिनकी संख्या आठ है, अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। मौलिक कृतियाँ कुल 9 हैं, जिन्हें स्वयं तुकबन्दी कहा है। इनकी समस्त कृतियों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित रूप में उपस्थित किया जा सकता है।

पद्य (अनुवाद)

विनय विनोद 1889 ई.- भृतहरि के 'वैराग्य शतक' का दोहों में अनुवाद

विहार वाटिका 1890 ई.- गीत गोविन्द का भावानुवाद

स्नेह माला 1890 ई.- भृतहरि के'श्रृंगार शतक' का दोहों में अनुवाद

श्री महिम्न स्तोत्र 1891 ई.- संस्कृत के 'महिम्न स्तोत्र। का संस्कृत वृत्तों में अनुवाद

गंगा लहरी 1891 ई.- पण्डितराज जगन्नाथ की 'गंगा लहरी' का सवैयों में अनुवाद

ऋतुतरंगिणी 1891 ई.- कालिदास के 'ऋतुसंहार' का छायानुवाद

सोहागरात अप्रकाशित- बाइरन के 'ब्राइडल नाइट' का छायानुवाद

कुमारसम्भवसार 1902 ई.- कालिदास के 'कुमार सम्भवम' के प्रथम पाँच सर्गों का सारांश।

गद्य (अनुवाद)

भामिनी-विलास 1891 ई.- पण्डितराज जगन्नाथ के 'भामिनी विलास' का अनुवाद

अमृत लहरी 1896 ई.- पण्डितराज जगन्नाथ के 'यमुना स्तोत्र' का भावानुवाद

बेकन-विचार रत्नावली 1901 ई.- बेकन के प्रसिद्ध निबन्धों का अनुवाद

शिक्षा 1906 ई.- हर्बर्ट स्पेंसर के 'एज्युकेशन' का अनुवाद

'स्वाधीनता' 1907 ई.- जॉन स्टुअर्ट मिल के 'ऑन लिबर्टी' का अनुवाद

जल चिकित्सा 1907 ई.- जर्मन लेखक लुई कोने की जर्मन पुस्तक के अंग्रेजी अनुवाद का अनुवाद

हिन्दी महाभारत 1908 ई.- 'श्महाभारत' की कथा का हिन्दी रूपान्तर

रघुवंश 1912 ई.- 'रघुवंश' महाकाव्य का भाषानुवाद

वेणी-संहार 1913 ई.- संस्कृत कवि भट्ट-नारायण के 'वेणीसंहार' नाटक का अनुवाद

कुमार सम्भव 1915 ई.- कालिदास के 'कुमार सम्भव' का अनुवाद

मेघदूत 1917 ई.- कालिदास के 'मेघदूत' का अनुवाद

किरातार्जुनीय 1917 ई.- भारवि के 'किरातार्जुनीय' का अनुवाद

प्राचीन पण्डित और कवि 1918 ई.- अन्य भाषाओं के लेखों के आधार पर प्राचीन कवियों और पण्डितों का परिचय

आख्यायिका सप्तक 1927 ई.- अन्य भाषाओं की चुनी हुई सात आख्यायिकाओं का छायानुवाद

मौलिक पद्य रचनाएँ

देवी स्तुति-शतक 1892 ई.

कान्यकुब्जावलीव्रतम 1898 ई.

समाचार पत्र सम्पादन स्तवः 1898 ई.

नागरी 1900 ई.

कान्यकुब्ज- अबला-विलाप 1907 ई.

काव्य मंजूषा 1903 ई.

सुमन 1923 ई.

द्विवेदी काव्य-माला 1940 ई.

कविता कलाप 1909 ई.द्य

मौलिक गद्य रचनाएँ

तरुणोपदेश (अप्रकाशित)

हिन्दी शिक्षावली तृतीय भाग की समालोचना 1901 ई.

वैज्ञानिक कोश 1906 ई.,

नाट्यशास्त्र' 1912 ई.
विक्रमांकदेवचरितचर्चा 1907 ई.
हिन्दी भाषा की उत्पत्ति 1907 ई.
सम्पत्तिशास्त्र 1907 ई.
कौटिल्य कुठार 1907 ई.
कालिदास की निरकुंशता 1912 ई.
वनिता-विलाप 1918 ई.
औद्योगिकी 1920 ई.
रसज्ञ रंजन 1920 ई.
कालिदास और उनकी कविता 1920 ई.
सुकवि संकीर्तन 1924 ई.
अतीत स्मृति 1924 ई.
साहित्य सन्दर्भ 1928 ई.
अद्‌भुत आलाप 1924 ई.
महिलामोद 1925 ई.
आध्यात्मिकी 1928 ई.
वैचित्र्य चित्रण 1926 ई.
साहित्यालाप 1926 ई.
विज्ञ विनोद 1926 ई.
कोविद कीर्तन 1928 ई.
विदेशी विद्वान् 1928 ई.
प्राचीन चिह्न 1929 ई.
चरित चर्या 1930 ई.
पुरावृत्त 1933 ई.
दृश्य दर्शन 1928 ई.
आलोचनांजलि 1928 ई.
चरित्र चित्रण 1929 ई.
पुरातत्त्व प्रसंग 1929 ई.
साहित्य सीकर 1930 ई.
विज्ञान वार्ता 1930 ई.
वाग्विलास 1930 ई.

संकलन 1931 ई.

विचार-विमर्श 1931 ई.

उपर्युक्त कृतियों के अतिरिक्त तेरहवें हिन्दी साहित्य सम्मेलन (1923 ई.) काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा किये गये अभिनन्दन (1933 ई. और प्रयाग में आयोजित 'द्विवेदी मेला', 1933 ई.) के अवसर पर इन्होंने जो भाषण दिये थे, उन्हें भी पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित किया गया है। आपकी बनायी हुई छः बालोपयोगी स्कूली पुस्तकें भी प्रकाशित हैं।

मृत्यु

21 दिसम्बर सन् 1938 ई. को रायबरेली में महावीर प्रसाद द्विवेदी जी का स्वर्गवास हो गया। हिन्दी साहित्य का आचार्य पीठ अनिश्चितकाल के लिए सूना हो गया। महावीर प्रसाद द्विवेदी हिन्दी के पहले लेखक थे, जिन्होंने अपनी जातीय परंपरा का गहन अध्ययन सिर्फ नहीं किया था, उसे आलोचकीय दृष्टि से भी देखा था। उन्होंने वेदों से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक के संस्कृत-साहित्य की निरंतर प्रवाहमान धारा का अवगाहन किया था एवं उपयोगिता तथा कलात्मक योगदान के प्रति एक वैज्ञानिक नजरिया अपनाया था। उन्होंने श्रीहर्ष के संस्कृत महाकाव्य नैधीय चरितम् पर अपनी पहली आलोचना पुस्तक नैषधचरित चर्चा नाम से लिखी (1899), जो संस्कृत-साहित्य पर हिन्दी में पहली आलोचना-पुस्तक भी है। फिर उन्होंने लगातार संस्कृत-साहित्य का अन्वेषण, विवेचन और मूल्यांकन किया। उन्होंने संस्कृत के कुछ महाकाव्यों के हिन्दी में औपन्यासिक रूपांतर भी किया, जिनमें कालिदास कृत रघुवंश, कुमार संभव, मेघदूत, किरातार्जुनीय प्रमुख हैं। संस्कृत, ब्रज भाषा और खड़ी बोली में स्फुट काव्य-रचना से साहित्य-साधना का आरंभ करने वाले महावीर प्रसाद द्विवेदी ने संस्कृत और अंग्रेजी से क्रमशः ब्रज भाषा और हिन्दी में अनुवाद-कार्य के अलावा प्रभूत समालोचनात्मक लेखन किया। उनकी मौलिक पुस्तकों में नाट्यशास्त्र (1904 ई.), विक्रमांकदेव चरितचर्या (1907 ई.), हिन्दी भाषा की उत्पत्ति (1907 ई.) और संपत्तिशास्त्र (1907 ई.) प्रमुख हैं तथा अनुदित पुस्तकों में शिक्षा (हर्बर्ट स्पेंसर के एजुकेशन का अनुवाद, 1906 ई.) और स्वाधीनता (जॉन, स्टुअर्ट मिल के ऑन लिबर्टी का अनुवाद, 1907 ई.)।

3

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का नाम खड़ी बोली को काव्य भाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने वाले कवियों में बहुत आदर से लिया जाता है। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में 1890 ई. के आस-पास अयोध्यासिंह उपाध्याय ने साहित्य सेवा के क्षेत्र में पदार्पण किया।

परिवार और शिक्षा

अयोध्यासिंह उपाध्याय का जन्म जिला आजमगढ़ के निजामाबाद नामक स्थान में सन् 1865 ई. में हुआ था। हरिऔध के पिता का नाम भोलासिंह और माता का नाम रुक्मणी देवी था। अस्वस्थता के कारण हरिऔध जी का विद्यालय में पठन-पाठन न हो सका, अतः इन्होंने घर पर ही उर्दू, संस्कृत, फारसी, बांग्ला एवं अंग्रेजी का अध्ययन किया। 1883 में ये निजामाबाद के मिडिल स्कूल के हेडमास्टर हो गए। 1890 में कनूनगो की परीक्षा पास करने के बाद आप कघनून गो बन गए। सन् 1923 में पद से अवकाश लेने पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्राध्यापक बने।

कार्यक्षेत्र

खड़ी बोली के प्रथम महाकाव्यकार हरिऔध जी का सृजनकाल हिन्दी के तीन युगों में विस्तृत है-

1. भारतेन्दु युग
2. द्विवेदी युग
3. छायावादी युग

इसीलिये हिन्दी कविता के विकास में 'हरिऔध' जी की भूमि का नींव के पत्थर के समान है। उन्होंने संस्कृत छंदों का हिन्दी में सफल प्रयोग किया है। 'प्रियप्रवास' की रचना संस्कृत वर्णवृत्त में करके जहाँ 'हरिऔध' जी ने खड़ी बोली को पहला महाकाव्य दिया, वहीं आम हिन्दुस्तानी बोलचाल में 'चोखे चौपदे', तथा 'चुभते चौपदे' रचकर उर्दू जुबान की मुहावरेदारी की शक्ति भी रेखांकित की।

सर्वाधिक प्रसिद्धि

हरिऔध को कवि रूप में सर्वाधिक प्रसिद्धि उनके प्रबन्ध काव्य 'प्रियप्रवास' के कारण मिली। 'प्रियप्रवास' की रचना से पूर्व की काव्य कृतियाँ कविता की दिशा में उनके प्रयोग की परिचायिका हैं। इन कृतियों में प्रेम और श्रृंगार के विभिन्न पक्षों को लेकर काव्य रचना के लिए किए गए अभ्यास की झलक मिलती है। 'प्रियप्रवास' को इसी क्रम में लेना चाहिए। 'प्रियप्रवास' के बाद की कृतियों में 'चोखे चौपदे' तथा 'वैदेही बनवास' उल्लेखनीय हैं। 'चोखे चौपदे' लोकभाषा के प्रयोग की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। 'प्रियप्रवास' की रचना संस्कृत की कोमल कान्त पदावली में हुई है और उसमें तत्सम शब्दों का बाहुल्य है। 'चोखे चौपदे' में मुहावरों के बाहुल्य तथा लोकभाषा के समावेश द्वारा कवि ने यह सिद्ध कर दिया है कि वह अपनी सीधी सादी जबान को भूला नहीं है। 'वैदेही बनवास' की रचना द्वारा एक और प्रबन्ध सृष्टि का प्रयत्न किया गया है। आकार की दृष्टि से यह ग्रन्थ छोटा नहीं है, किन्तु इसमें 'प्रियप्रवास' जैसी ताजगी और काव्यत्व का अभाव है।

प्रियप्रवास

'प्रियप्रवास' एक सशक्त विप्रलम्भ काव्य है। कवि ने अपनी इस कृति में कृष्ण कथा के एक मार्मिक पक्ष को किंचित् मौलिकता और एक नूतन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। श्रीकृष्ण के मथुरा-गमन के उपरान्त ब्रजवासियों के विरहसन्तप्त जीवन तथा मनोभावों का हृदयस्पर्शी अंकन प्रस्तुत करने में उन्हें बहुत ही सफलता प्राप्त हुई है। संस्कृत की समस्त तथा कोमल-कान्त पदावली से

अलंकृत एवं संस्कृत वर्ण वृत्तों में लिखित यह रचना खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य है। रामचन्द्र शुक्ल ने इसे आकार की दृष्टि से बड़ा कहा किन्तु उन्हें इस कृति में समुचित कथानक का अभाव प्रतीत हुआ और इसी अभाव का उल्लेख करते हुए उन्होंने इसके प्रबन्धत्व एवं महाकाव्यत्व को अस्वीकार कर दिया है। शुक्ल जी से सरलतापूर्वक सहमत नहीं हुआ जा सकता। प्रबन्ध काव्य सम्बन्धी कुछ थोड़ी-सी रूढ़ियों को छोड़ दिया जाए तो इस काव्य में प्रबन्धत्व का दर्शन आसानी से किया जा सकता है। यह सच है कि ऊपर से देखने पर इसका कथानक प्रवास प्रसंग तक ही सीमित है, किन्तु 'हरिऔध' ने अपने कल्पना कौशल के द्वारा, इसी सीमित क्षेत्र में श्री कृष्ण के जीवन की व्यापक झाकियाँ प्रस्तुत करने के अवसर ढूँढ निकाले हैं। इस काव्य की एक और विशेषता यह है कि इसके नायक श्रीकृष्ण शुद्ध मानव रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। वे लोक-संरक्षण तथा विश्व-कल्याण की भावना से परिपूर्ण मनुष्य अधिक हैं और अवतार अथवा ईश्वर नाम मात्र के।

अन्य साहित्यिक कृतित्त्व

हरिऔध के अन्य साहित्यिक कृतित्त्व में उनके ब्रज भाषा काव्य संग्रह 'रसकलश' को विस्मृत नहीं किया जा सकता है। इसमें उनकी आरम्भिक स्फुट कविताएँ संकलित हैं। ये कविताएँशृंगारिक हैं और काव्य-सिद्धान्त निरुपण की दृष्टि से लिखी गयी हैं। इन्होंने गद्य और आलोचना की ओर भी कुछ-कुछ ध्यान दिया था। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय हिन्दी के अवैतनिक अध्यापक पद पर कार्य करते हुए इन्होंने 'कबीर वचनावली' का सम्पादन किया। 'वचनावली' की भूमि का में कबीर पर लिखे गए लेखों से इनकी आलोचना दृष्टि का पता चलता है। इन्होंने 'हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास' शीर्षक एक इतिहास ग्रन्थ भी प्रस्तुत किया, जो बहुत ही लोकप्रिय हुआ।

एक अमेरिकन 'एनसाइक्लोपीडिया' ने इनका परिचय प्रकाशित करते हुए इन्हें विश्व के साहित्य सेवियों की पंक्ति प्रदान की। खड़ी बोली काव्य के विकास में इनका योगदान निश्चित रूप से बहुत महवपूर्ण है। यदि 'प्रियप्रवास' खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य है तो 'हरिऔध' खड़ी बोली के प्रथम महाकवि।

विरासत

हरिऔध जी ने गद्य और पद्य दोनों ही क्षेत्रों में हिन्दी की सेवा की। वे द्विवेदी युग के प्रमुख कवि है। उन्होंने सर्वप्रथम खड़ी बोली में काव्य-रचना

करके यह सिद्ध कर दिया कि उसमें भी ब्रज भाषा के समान खड़ी बोली की कविता में भी सरसता और मधुरता आ सकती है। हरिऔध जी में एक श्रेष्ठ कवि के समस्त गुण विद्यमान थे। उनका 'प्रिय प्रवास' महाकाव्य अपनी काव्यगत विशेषताओं के कारण हिन्दी महाकाव्यों में 'माइल-स्टोन' माना जाता है। श्री सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के शब्दों में हरिऔध जी का महत्त्व और अधिक स्पष्ट हो जाता है- इनकी यह एक सबसे बड़ी विशेषता है कि ये हिन्दी के सार्वभौम कवि हैं। खड़ी बोली, उर्दू के मुहावरे, ब्रज भाषा, कठिन-सरल सब प्रकार की कविता की रचना कर सकते हैं।

कृतियाँ

हरिऔध' जी आरम्भ में नाटक तथा उपन्यास लेखन की ओर आकर्षित हुए। 'हरिऔध' जी की दो नाट्य कृतियाँ 'प्रद्युम्न विजय' तथा 'रुक्मणी परिणय' क्रमशः 1893 ई. तथा 1894 ई. में प्रकाशित हुई। 1894 ई. में ही इनका प्रथम उपन्यास 'प्रेमकान्ता' भी प्रकाशन में आया। बाद में दो अन्य औपन्यासिक कृतियाँ 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' (1899 ई.) और 'अधखिला फूल' (1907 ई.) नाम से प्रकाशित हुई। ये नाटक तथा उपन्यास साहित्य के उनके प्रारम्भिक प्रयास होने की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। इन कृतियों में नाट्य कला अथवा उपन्यास कला की विशेषताएँ ढूँढना तर्कसंगत नहीं हैं। उपाध्याय जी की प्रतिभा का विकास वस्तुतः कवि रूप में हुआ। खड़ी बोली का प्रथम महाकवि होने का श्रेय 'हरिऔध' जी को है। 'हरिऔध' के उपनाम से इन्होंने अनेक छोटे-बड़े काव्यों की सृष्टि की, जिनकी संख्या पन्द्रह से ऊपर है-

सन् काव्य

1899 ई. 'रसिक रहस्य'
1900 ई. 'प्रेमाम्बुवारिधि', 'प्रेम प्रपंच'
1901 ई. 'प्रमाम्बु प्रश्रवण', 'प्रेमाम्बु प्रवाह'
1904 ई. 'प्रेम पुष्पहार'
1906 ई. 'उदबोधन'
1909 ई. 'काव्योपवन'
1914 ई. 'प्रियप्रवास'
1916 ई. 'कर्मवीर'
1917 ई. 'ऋतु मुकुर'

1925 ई. 'पद्मप्रसून'
1927 ई. 'पद्मप्रमोद'
1932 ई. 'चोखेचौपदे'
1940 ई. 'वैदेही बनवास'
'चुभते चौपदे'
'रसकलश'

खड़ी बोली काव्य-रचना

अयोध्यासिंह उपाध्याय खड़ी बोली काव्य के निर्माताओं में आते हैं। इन्होंने अपने कवि कर्म का शुभारम्भ ब्रज भाषा से किया। 'रसकलश' की कविताओं से पता चलता है कि इस भाषा पर इनका अच्छा अधिकार था, किन्तु इन्होंने समय की गति शीघ्र ही पहचान ली और खड़ी बोली काव्य-रचना करने लगे। काव्य भाषा के रूप में इन्होंने खड़ी बोली का परिमार्जन और संस्कार किया। 'प्रियप्रवास' की रचना करके इन्होंने संस्कृत गर्भित कोमल-कान्तपदावली संयुक्त भाषा का अभिजात रूप प्रस्तुत किया। 'चोखे चौपदे' तथा 'चुभते चौपदे' द्वारा खड़ी बोली के मुहावरा सौन्दर्य एवं उसके लौकिक स्वरूप की झाँकी दी। छन्दों की दृष्टि से इन्होंने संस्कृत, हिन्दी तथा उर्दू सभी प्रकार के छन्दों का धड़ल्ले से प्रयोग किया। ये प्रतिभा सम्पन्न मानववादी कवि थे। इन्होंने 'प्रियप्रवास' में श्रीकृष्ण के जिस मानवीय स्वरूप की प्रतिष्ठा की है, उससे इनके आधुनिक दृष्टिकोण का पता चलता है। इनके श्रीकृष्ण 'रसराज' या 'नटनागर' होने की अपेक्षा लोकरक्षक नेता हैं।

रचनाएँ

महाकाव्य
प्रियप्रवास
वैदेही वनवास
मुक्तक काव्य
चोखे चौपदे
चुभते चौपदे
कल्पलता
बोलचाल

पारिजात
हरिऔध सतसई

उपन्यास

ठेठ हिन्दी का ठाठ
अधखिला फूल।
आलोचना
कबीर वचनावली
साहित्य सन्दर्भ
हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास।

नाटक

रुक्मणी परिणय
प्रधुम्न विजय व्यायोग

सम्मान

अपने जीवनकाल में इन्हें यथोचितृ सम्मान मिला था। 1924 ई. में इन्होंने हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रधान पद को सुशोभित किया था। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने इनकी साहित्य सेवाओं का मूल्यांकन करते हुए इन्हें हिन्दी के अवैतनिक अध्यापक का पद प्रदान किया। एक अमेरिकन 'एनसाइक्लोपीडिया' ने इनका परिचय प्रकाशित करते हुए इन्हें विश्व के साहित्य सेवियों की पंक्ति प्रदान की। खड़ी बोली काव्य के विकास में इनका योगदान निश्चित रूप से बहुत महत्त्वपूर्ण है। यदि 'प्रियप्रवास' खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य है तो 'हरिऔध' खड़ी बोली के प्रथम महाकवि।

मृत्यु

16 मार्च, 1947 को अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने इस दुनिया से लगभग 76 वर्ष की आयु में विदा ली।

कहें क्या बात आंखों की, चाल चलती हैं मनमानी
सदा पानी में डूबी रह, नहीं रह सकती हैं पानी
लगन है रोग या जलन, किसी को कब यह बतलाया
जल भरा रहता है उनमें, पर उन्हें प्यासी ही पाया।

प्रियप्रवास

प्रियप्रवास अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' की हिन्दी काव्य रचना है। हरिऔध जी को काव्य प्रतिष्ठा 'प्रियप्रवास' से मिली। इसका रचनाकाल सन् 1909 से सन् 1913 है। 'प्रियप्रवास' विरह काव्य है। कृष्ण काव्य की परंपरा में होते हुए भी, उससे भिन्न है। 'हरिऔध' जी ने कहा है - मैंने श्री कृष्णचंद्र को इस ग्रंथ में एक महापुरुष की भाँति अंकित किया है, ब्रह्म करके नहीं। कृष्णचरित को इस प्रकार अंकित किया है जिससे आधुनिक लोग भी सहमत हो सकें।

कथावस्तु

'प्रियप्रवास' आधुनिक हिन्दी साहित्य का प्रथम सफल महाकाव्य है। इसकी कथावस्तु का मूलाधार श्रीमद्भागवत का दशम स्कंध है, जिसमें श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर उनके यौवन, कृष्ण का ब्रज से मथुरा को प्रवास और लौट आना वर्णित है। सम्पूर्ण कथा, दो भागों में विभाजित है। पहले से आठवें सर्ग तक की कथा में कंस के निमंत्रण को लेकर अक्रूर जी ब्रज में आते हैं तथा श्रीकृष्ण समस्त ब्रजवासियों को शोक में छोड़कर मथुरा चले जाते हैं। नौवें सर्ग से लेकर सत्रहवें सर्ग तक की कथा में कृष्ण, अपने मित्र उद्धव को ब्रजवासियों को सांत्वना देने के लिए मथुरा भेजते है। राधा अपने व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊपर उठकर मानवता के हित के लिए अपने आप को न्योछावर कर देती है। राधा की प्रसिद्ध उक्ति है-

'प्यारे जीवें जगहित करें, गेह चाहे न आवें।'

इस महाकाव्य में कृष्ण एवं राधा का जो रूप वर्णित हुआ है, साधारण परंपरागत रूप से भिन्न है। कृष्ण का चरित्र जन साधारण के लिए एक प्रेरणा स्रोत है। द्विवेदी युग में द्रेश -प्रेम, स्वाधीनता, विश्व बंधुत्व, मानवतावाद और सुधारवाद की जो लहर चली, उसका स्वर प्रियप्रवास में सुनाई पड़ता है। शिवदान सिंह चौहान का कहना है कि 'प्रियप्रवास में कृष्ण अपने शुद्ध मानव रूप में विश्व कल्याण के काम में रत एक जन नेता के रूप में अंकित किए गए है। श्रीधर पाठक ने प्रियप्रवास के सम्बन्ध में लिखा है-

दिवस के अवसान समे मिला॥
'प्रियप्रवास' अहो प्रिय आपका॥
अमित मोद हुआ चख कर चित्त को॥
सरस स्वाद -युता कविता नई॥

श्रीकृष्ण का चरित्र-चित्रण

महापुरुष के रूप में अंकित होते हुए भी 'प्रियप्रवास' के कृष्ण में वही अलौकिक स्फूर्ति है, जो अवतारी ब्रह्मपुरुष में। कवि ने कृष्ण का चरित्र चित्रण मनोवैज्ञानिक दृष्टि से किया है, उनके व्यक्तित्त्व में सहानुभूति, व्युत्पन्नमतित्त्व और कर्म कौशल है। कृष्ण के चरित्र की तरह 'प्रियप्रवास' की राधा के चरित्र में भी नवीनता है। उसमें विरह की विकलता नहीं है, व्यथा की गंभीरता है। उसने कृष्ण के कर्मयोग को हृदयंगम कर लिया है। कृष्ण के प्रति उसका प्रेम विश्वात्म और उसकी वेदना लोकसेवा बन गई है। प्रेमिका देवी हो गई है, वह कहती हैं:

आज्ञा भूलूँ न प्रियतम की, विश्व के काम आऊँ
मेरा कौमार-व्रत भव में पूर्णता प्राप्त होवे।

'प्रियप्रवास' में यद्यपि कृष्ण महापुरुष के रूप में अंकित हैं, तथापि इसमें उनका यह रूप आनुषंगिक है। वे विशेषत: पारिवारिक और सामाजिक स्वजन हैं। जैसा पुस्तक के नाम से स्पष्ट है, मुख्य प्रसंग है - 'प्रियप्रवास', परिवार और समाज के प्रिय कृष्ण का वियोग। अन्य प्रसंग अवांतर हैं। यद्यपि वात्सल्य, सख्य और माधुर्य का प्राधान्य है और भाव में लालित्य है, तथापि यथास्थान ओज का भी समावेश है। समग्रत: इस महाकाव्य में वर्णन बाहुल्य और वाक्वैदग्ध्य का आधिक्य है। जहाँ कहीं संवेदना तथा हार्दिक उद्‌गीर्णता है, वहाँ रागात्मकता एवं मार्मिकता है। विविध ऋतुओं, विविध दृश्यों विविध चित्तवृत्तियों और अनुभूतियों के शब्दचित्र यत्र-तत्र बड़े सजीव हैं।

भूमिका

मैं बहुत दिनों से हिन्दी भाषा में एक काव्य-ग्रन्थ लिखने के लिए लालायित था। आप कहेंगे कि जिस भाषा में 'रामचरित-मानस', 'सूरसागर', 'रामचन्द्रिका', 'पृथ्वीराज रासो', 'पद्‌मावत' इत्यादि जैसे बड़े अनूठे काव्य प्रस्तुत हैं, उसमें तुम्हारे जैसे अल्पज्ञ का काव्य लिखने के लिए समुत्सुक होना वातुलता नहीं तो क्या है? यह सत्य है, किन्तु मातृभाषा की सेवा करने का अधिकार सभी को तो है, बने या न बने, सेवा-प्रणाली सुखद और हृदय-ग्राहिणी हो या न हो, परन्तु एक लालायित-चित्त अपनी प्रबल लालसा को पूरी किये बिना कैसे रहे? जिसके कान्त-पादांबुजों को निखिल-शास्त्र-पारंगत पूज्यपाद महात्मा तुलसीदास, कवि-शिरोरत्न महात्मा सूरदास, जैसे महाजनों ने परम सुगंधित अथच उत्फुल्ल पाटल प्रसून अर्पण कर अर्चना की है।

कविकुल-मण्डली-मण्डन केशव, देव, बिहारी, पद्माकर इत्यादि सहृदयों ने अपनी विकच-मल्लिका चढ़ा कर भक्ति-गद्गद-चित्त से आराधना की है, क्या उसकी मैं एक नितान्त साधारण पुष्प द्वारा पूजा नहीं कर सकता? यदि 'स्वान्तः सुखाय' मैं ऐसा कर सकता हूँ तो अपनी टूटी-फूटी भाषा में एक हिन्दी काव्य-ग्रन्थ भी लिख सकता हूँ, निदान इसी विचार के वशीभूत होकर मैंने 'प्रियप्रवास' नामक इस काव्य की रचना की है।

काव्य-भाषा

यह काव्य खड़ी बोली में लिखा गया है। खड़ी बोली में छोटे-छोटे कई काव्य-ग्रन्थ अब तक लिपिबद्ध हुए हैं, परन्तु उनमें से अधिकांश सौ,दो सौ पद्यों में ही समाप्त हैं, जो कुछ बड़े हैं वे अनुवादित हैं मौलिक नहीं। सहृदय कवि बाबू मैथिलीशरण गुप्त का 'जयद्रथ वध' निःसन्देह मौलिक ग्रन्थ है, परन्तु यह खण्ड-काव्य है। इसके अतिरिक्त ये समस्त ग्रन्थ अन्त्यानुप्रास विभूषित हैं, इसलिए खड़ी बोलचाल में मुझको एक ऐसे ग्रन्थ की आवश्यकता देख पड़ी, जो महाकाव्य हो, और ऐसी कविता में लिखा गया हो जिसे भिन्नतुकान्त कहते हैं। अतएव मैं इस न्यूनता की पूर्ति के लिए कुछ साहस के साथ अग्रसर हुआ और अनवरत परिश्रम करके इस 'प्रियप्रवास' नामक ग्रन्थ की रचना की, जो कि आज आप लोगों के कर-कमलों में सादर समर्पित है। मैंने पहले इस ग्रन्थ का नाम 'ब्रजांगना-विलाप' रखा था, किन्तु कई कारणों से मुझको यह नाम बदलना पड़ा, जो इस ग्रन्थ के समग्र पढ़ जाने पर आप लोगों को स्वयं अवगत होंगे। मुझमें महाकाव्यकार होने की योग्यता नहीं, मेरी प्रतिभा ऐसी सर्वतोमुखी नहीं, जो महाकाव्य के लिए उपयुक्त उपस्कर संग्रह करने में कृतकार्य हो सके, अतएव मैं किस मुख से यह कह सकता हूँ कि 'प्रियप्रवास' के बन जाने से खड़ी बोली में एक महाकाव्य न होने की न्यूनता दूर हो गई। हाँ, विनीत भाव से केवल इतना ही निवेदन करूँगा कि महाकाव्य का आभास-स्वरूप यह ग्रन्थ सत्रह सर्गों में केवल इस उद्देश्य से लिखा गया है कि इसको देखकर हिन्दी-साहित्य के लब्धाप्रतिष्ठ सुकवियों और सुलेखकों का ध्यान इस त्रुटि के निवारण करने की ओर आकर्षित हो। जब तक किसी बहुज्ञ मर्मस्पर्शिनी-सुलेखनी द्वारा लिपिबद्ध होकर खड़ी बोली में सर्वांग सुन्दर कोई महाकाव्य आप लोगों को हस्तगत नहीं होता, तब तक यह अपने सहज रूप में आप लोगों के ज्योति-विकीर्णकारी उज्ज्वल चक्षुओं के सम्मुख है, और

एक सहृदय कवि के कण्ठ से कण्ठ मिलाकर यह प्रार्थना करता है, 'जबलौं फुलै न केतकीय तबलौं बिलम करील।'

भाषा-शैली

'प्रियप्रवास' की भाषा संस्कृत-गर्भित है। उसमें हिन्दी के स्थान पर संस्कृत का रंग अधिक है। अनेक विद्वान् सज्जन इससे रुष्ट होंगे, कहेंगे कि यदि इस भाषा में 'प्रियप्रवास' लिखा गया तो अच्छा होता यदि संस्कृत में ही यह ग्रन्थ लिखा जाता। कोई भाषा-मर्मज्ञ सोचेंगे इस प्रकार संस्कृत-शब्दों को ठूँसकर भाषा के प्रकृत रूप को नष्ट करने की चेष्टा करना नितान्त गर्हित कार्य है। उक्त वक्तृता में भट्ट जी एक स्थान पर कहते हैं। दूसरी बात जो मैं आजकल खड़ी बोली के कवियों में देख रहा हूँ, वह समासबद्ध, क्लिष्ट संस्कृत-शब्दों का प्रयोग है, यह भी पुराने कवियों की पद्धति के प्रतिकूल है।

ललित काव्य की एक विधा का रूप धारण कर महाकाव्य 'साहित्यशास्त्र' का विषय बन गया और आचार्यों ने इसे भी लक्षण बद्ध कर दिया। भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य-शास्त्रीय परम्परा में इसका पर्याप्त विवेचन हुआ है। आधुनिक संदर्भों में 'महाकाव्य' पद में 'महा' विशेषण कृति के विपुल-व्यापक आकार, महान कलेवर, उत्कृष्ट विषय-वस्तु तथा प्रतिपाद्य विषय की रचनात्मक गरिमा का द्योतक है। महाकाव्य की कथावस्तु, नायकत्व, चरित्र-चित्रण, युगीन परिवेश, वस्तुवर्णन, भाव एवं रस, निरुपण तथा शैली की उन्नत गरिमा रहती है। इस दृष्टि से 'प्रिय प्रवास' खड़ी बोली हिन्दी का प्रथम महाकाव्य है। अप्रतिम वस्तु सौन्दर्य, उत्कृष्ट रचना-विधान एवं परम औदात्य का निर्वहन होने से 'हरिऔध' की यह कृति उनकी अद्‌भुत प्रतिभा एवं गहन अनुभूति का प्रमाण है। महाकाव्यत्व की विशेषताओं के आधार पर 'प्रियप्रवास' का मूल्यांकन निम्नानुसार है -

महाकाव्य में आकार की व्यापकता होती है। अर्थात् उसमें जीवन का सर्वांग चित्रण रहता है। महान पुरुष का जीवन-चरित्र होने से अनायास ही वह देश-काल की सीमा से विस्तारित हो जाता है। अंततः महत्तर मानव-मूल्यों की प्रतिस्थापना करने में महाकाव्य की सफलता निश्चित होती है। सत्रह सर्गों में विभक्त 'प्रियप्रवास' की कथावस्तु श्रीकृष्ण के मथुरा गमन के वृतान्त पर आधारित है। विरह-व्यथित ब्रजवासियों ने श्रीकृष्ण का गुणगान करते हुए उनके कर्तृत्व का वर्णन भी किया है, जैसे - पूतना वध, शकठासुर वध, कालिया नाग

वध, बकासुर वध आदि। इससे कथानक सुसंगठित रूप में प्रकट होता है। कथा-संधियों, अर्थ-प्रकृतियों एवं कार्यावस्थाओं के विधान से प्रियप्रवास ने यशोदा-विलाप, पवन-दूती प्रसंग, राधा-उद्धव संवाद आदि के माध्यम से कथावस्तु में मार्मिक-स्थलों की पहचान भी की है। कथानक के नायक 'श्रीकृष्ण' की महानता लौकिक पुरुष के रूप में चित्रित है, जिसमें आदर्श, नैतिकता, लोक सेवा एवं मानवता का कल्याण परम उद्देश्य है। श्रीकृष्ण के चरित्र का युगीन चित्रण विलक्षण है। 'विश्वम्भर मानव' के अनुसार - '' 'प्रियप्रवास' भारतीय नव-जागरण काल का ही महाकाव्य नहीं, वह जीवन के श्रेष्ठतम मानव-मूल्यों का कीर्ति-स्तंभ भी है। वैज्ञानिक युग की विभीषिका में मानवतावाद का विजयघोष है। कृष्ण को केन्द्र बनाकर इसमें जो कथा वर्णित है, उससे मनुष्य की महत्ता, जीवन की सुन्दरता, प्रेम की शक्ति और सबसे अधिक मानवीय संबंधों की अनुपम कोमलता पर प्रकाश पड़ता है।"

महाकाव्य परम्परानुसार प्रिय प्रवास के नायक-नायिका श्रीकृष्ण एवं राधा हैं, जो पौराणिक काल के आदर्श हैं। श्रीकृष्ण महान् पुरुष एवं राधा उदात्त नायिका के रूप में चित्रित हैं। मौलिकता यह है कि राधा-कृष्ण परम ब्रह्म न होकर मानव-मानवी हैं। श्रीकृष्ण लोक सेवक एवं राधा लोक सेविका है। इन दोनों के माध्यम से कवि ने मानवीय प्रेम को धीरे-धीरे इतनी उच्च भूमि पर ले जाकर प्रतिष्ठित किया है कि वह व्यक्ति, परिवार, ग्राम और समाज की सीमाओं को पार करता हुआ विश्व-प्रेम में परिवर्तित हो जाता है। श्रीकृष्ण के लोक सेवक रूप का चित्रण दृष्टव्य है -

जो होता निरत तप में मुक्ति की कामना से।
आत्मार्थी है, न कह सकते हैं उसे आत्मत्यागी।
जी से प्यारा जगत-हित औ लोक-सेवा जिसे है।
प्यारी सच्चा अवनि-तल में आत्म त्यागी वही है।।

राधा सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति, मृदुभाषिणी एवं श्रीकृष्ण की अनन्य प्रेयसी है। लोक सेवा के लिए वह प्रिय-वियोग को स्वीकार कर लेती हैं। सामान्य मानव-जनित उद्‌गार प्रकट करने में भी वह संकोच नहीं करती। वह नारी की मनोव्यथा को प्रकट करती हुई स्पष्ट रूप से कहती है -

मेरे प्यारे, पुरुष, पृथ्वी-रत्न और शान्त-धी हैं।
सन्देशों में तदपि उनकी, वेदना व्यंजिता है।
मैं नारी हूँ, तरल-उर हूँ, प्यार से व्यंचिता हूँ।
जो होती हूँ विकल विमना, व्यस्त वैचित्र्य क्या है ?

राधा-कृष्ण के अतिरिक्त नन्द, यशोदा, उद्धव आदि का चरित्रांकन भी यथानुकूल हुआ है। यशोदा का मातृत्व और नछ की आदर्शमय भूमि का दर्शनीय है। अपने पुत्र के वियोग में यशोदा का निरन्तर अश्रुपात भाव-विह्वल करने वाला है -

सहकर कितने ही कष्ट औ संकटों को।
बहु यजन कराके पूज के निर्जरों को।
यक सुअन मिला है, जो मुझे यत्न द्वारा।
प्रियतम! वह मेरा कृष्ण प्यारा कहाँ है ?

प्रियप्रवास का अंगी रस 'वियोगशृंगार' है। साथ ही वात्सल्य रस का भी सुन्दर चित्रण हुआ है। वीर, रौद्र, भयानक रस भी कथा अनुरूप हैं। रस-व्यंजना में महाकाव्य के लक्षणों का सम्यक् निर्वाह हुआ है। विरोधी रसों से बचने का प्रयास है। भाव-शांति, भाव-शबलता के साथ भाव-निरुपण भी सफलता पूर्वक है। राधा का श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम 'वियोगशृंगार' की रसमयता के साथ व्यंजित हुआ है -

रो-रो चिन्ता सहित दिन को राधिका थीं बिताती।
आँखों को थीं सजल रखतीं उन्मना थीं दिखाती।
शोभावाले जलद-वपु की, हो रही चातकी थीं।
उत्कंठा थी परम प्रबला, वेदना वर्द्धिता थीं।।

प्रियप्रवास का प्रकृति-चित्रण अपूर्व है। प्राणी-प्रकृति के अटूट संबंधों को प्रथम सर्ग से ही व्यक्त कर दिया, जहाँ ब्रजवासी प्रकृति के साथ सहज भाव से पले-बढ़े। 'पवन-दूत' के माध्यम से राधिका का संदेश प्रकृति के साथ गहरे तादात्म्य का प्रमाण है। प्रकृति का आलम्बन, उद्दीपन, अलंकार एवं भाव-प्रकटीकरण की दृष्टि से सुन्दर निरुपण हुआ है। विषाद, खिन्नता, शोक आदि भावों को प्रकृति-चित्रण के साथ प्रकटीकरण अत्यन्त मोहक रूप में व्यक्त होता है, जैसे -

समय था सुनसान निशीथ का,
अटल भूतल में तम राज्य था।
प्रलय काल समान प्रसुप्त हो,
प्रकृति - निश्चल नीरव शांत थी।।

प्रियप्रवास का मूल लक्ष्य विश्व-मैत्री, विश्व-प्रेम, विश्व-कल्याण है। श्रीकृष्ण के चरित्र को मानवीय रूप देकर लोक सेवा में तत्पर दिखाया है। इसके

साथ स्थायी मानव-संबंधों का सम्यक् विवेचन हृदय तत्त्व के साथ किया है, जहाँ माता-पिता, प्रेमी-प्रेमिका, सखा-सखी निरन्तर सुख-दु:ख में साथ देते हैं और पथ की बाधा नहीं बनते, वरन् लोकसेवा को परम उद्देश्य मानते हुए सहभागी बनते हैं। आधुनिक मानव में मानवीय मूल्यों का संचार हों तथा स्वयं के लिए नहीं बल्कि लोक के लिए जीने की अमूल्य प्रेरणा है। श्रीकृष्ण का यह कथन इसी उद्देश्य को प्रकट करता है -

है आत्मा का न सुख किसको विश्व के मध्य प्यारा।
सारे प्राणी स-रुचि इसकी माधुरी में बँधे हैं।
जो होता है न वश इसके आत्म-उत्सर्ग द्वारा।
ऐ कान्ते हैं सफल अवनी-मध्य आना उसी का।

कला-विधान में कुछ नवीनता भी है। मंगला चरण के स्थान पर 'प्रकृति-वर्णन' से काव्य का आरंभ है। नायक-नायिका आधुनिक मानव-मानवी हैं। काव्य-ग्रंथ का नाम 'चरित्र प्रधान' न होकर 'घटना-प्रधान' है। भाषा संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली हिन्दी है। भाषा में चित्रमयता व बिम्ब विधान आकर्षक है, यथा-

दिवस का अवसान समीप था,
गगन था कुछ लोहित हो चला।
तरुशिखा पर थी अब राजती,
कमलिनी कुल बल्लभ की प्रभा।

'प्रियप्रवास' में सर्वत्र वर्णिक छन्द प्रयुक्त हुए हैं, वे हैं - द्रुत विलम्बित, वंशस्थ, मालिनी, मन्दाक्रांता, शार्दूल विक्रीड़ित, वसन्ततिलका, शिखरिणी आदि। संस्कृत काव्य ग्रंथों की भाँति अतुकांत और अन्त्यानुप्रास रहित है। अलंकार सशक्त, स्वाभाविक एवं भावों की अभिव्यक्ति करने वाले हैं। शब्दालंकारों व अर्थालंकारों का उचित आधान, अनुप्रासिक लालित्य, कोमलकांत पदावलियाँ अत्यधिक प्रभावोत्पादक बन पड़ी हैं। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टांत, निदर्शन, संदेह, प्रतीप, उत्प्रेक्षा, अपह्नुति, व्यतिरेक आदि अलंकार यत्र-तत्र प्रयुक्त हैं। आलंकारिक विधान, कोमलकांत पदावली व आनुप्रासिक भाषा का निदर्शन दृष्टव्य है -

'रूपोद्यान-प्रफुल्ल प्राय कलिका, राकेन्दु-बिंबानना।
तन्वंगी, कलहासिनी, सुरसिका, क्रीड़ा-कला पुत्तली।।
शोभा-वारिधि की अमूल्य मणि-सी, लावण्य लीलामयी।
श्री राधा मृदुभाषिणी, मृगदृगी, माधुर्य-सन्मूर्ति् थीं।।

वस्तुतः 1914 ई. में रचित हिन्दी खड़ी बोली का प्रथम काव्य युगान्तरकारी घटना है। महत् विषय, उदात्त चरित्र, महान उद्देश्य, खड़ी बोली, संस्कृत छंद, भिन्न तुकान्त में महाकाव्य की रचना विलक्षण है। भक्तिकालीन-रीतिकालीन प्रवृत्ति का चिह्न दिखाई नहीं देता, बल्कि युगानुकूल संदेश के साथ भारतीय नव-जागरण की दिशा में श्रेष्ठतम मानव-मूल्यों का वर्जन करने वाला है। वैज्ञानिक युग की विभीषिका में मानवतावाद का जयघोष है। यह मनुष्य की महत्ता, जीवन की सुन्दरता, प्रेम की शक्ति, मानवीय संबंधों की तरलता एवं भारतीय सांस्कृतिक विरासत को गति प्रदान करने वाली रचना है।

4

जगन्नाथदास रत्नाकर

जगन्नाथदास 'रत्नाकर' अंग्रेजी Jagannathdas Ratnakar जन्म. 1866 ई (काशी-उत्तर प्रदेश, मृत्यु 22 जून, 1932 ई) भारत के प्रसिद्ध कवियों में से एक थे। उन्हें आधुनिक युग के श्रेष्ठ ब्रज भाषा के कवियों में गिना जाता है। प्राचीन संस्कृति, मध्यकालीन हिन्दी काव्य, उर्दू, फारसी, अंग्रेजी, हिन्दी, आयुर्वेद, संगीत, ज्योतिष तथा दर्शनशास्त्र इन सभी की अच्छी जानकारी जगन्नाथदास जी को थी। इन्होंने प्रचुर साहित्य सेवा की थी। ब्रज भाषा काव्यधारा के अंतिम सर्वश्रेष्ठ कवि जगन्नाथदास 'त्नाकर आधुनिक हिंदी साहित्य में अनुभूतियों के सशक्त चित्रकार, ब्रज भाषा के समर्थ कवि और एक अद्वितीय भाष्यकार के रूप में विख्यात हैं। उन्होंने खड़ी बोली के युग में जीवित व्यक्ति की तरह हृदय के प्रत्येक स्पंदन को महसूस करने वाली ब्रज भाषा का आदर्श खड़ा किया, जिसके हर शब्द की अपनी गति और लय है।

जीवन परिचय

बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' का जन्म संवत् 1923 (1866 ई.) में भाद्रपद शुक्ल पक्ष पंचमी को काशी (वर्तमान बनारस) के शिवाला घाट मोहल्ले में हुआ था। इनके पिता पुरुषोत्तमदास दिल्ली वाले अग्रवाल वैश्य थे और पूर्वज पानीपत के रहने वाले थे, जिनका मुगल दरबारों में बड़ा सम्मान था। लेकिन परिस्थितिवश उन्हें काशी आकर रहना पड़ा। पुरुषोत्तमदास फारसी भाषा के अच्छे

विद्वान् थे और हिन्दी फारसी कवियों का बड़ा सम्मान करते थे। भारतेंदु हरिश्चंद्र उनके मित्र थे और इनके यहाँ बहुधा आया-जाया करते थे। रत्नाकर जी ने बाल्यावस्था में भारतेंदु हरिश्चंद्र का सत्संग भी किया था। भारतेंदु जी ने कहा भी था कि, 'कसी दिन यह बालक हिन्दी की शोभा वृद्धि करेगा'।

शिक्षा

जगन्नाथदास 'रत्नाकर' के रहन-सहन में राजसी ठाठ-बाट था। इन्हें हुक्का, इत्र, पान, घुड़सवारी आदि का बहुत शौक था। हिन्दी का संस्कार उन्हें अपने हिन्दी-प्रेमी पिता से मिला था। स्कूली शिक्षा में उन्होंने कई भाषाओं का ज्ञान अर्जित किया। काशी के क्वींस कॉलेज से रत्नाकर जी ने सन् 1891 ई. में बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की, जिसमें अंग्रेजी के साथ दूसरी भाषा फारसी भी थी। ये फारसी में एम.ए. की परीक्षा देना चाहते थे, पर कुछ कारणों से न दे सके।

जीविकोपार्जन

जगन्नाथदास जी ने 'जकी उपनाम से फारसी में कविताएँ लिखना प्रारंभ किया। इस सम्बन्ध में इनके उस्ताद मुहम्मद हसन फायज थे। जब रत्नाकर जी जीविकोपार्जन की तरफ मुड़े तो वे अबागढ़ के खजाने के निरीक्षक नियुक्त हुए। सन् 1902 में वे अयोध्या नरेश के निजी सचिव नियुक्त हुए, किन्तु सन् 1906 में महाराजा का स्वर्गवास हो गया। लेकिन इनकी सेवाओं से प्रसन्न होकर महारानी जगदंबा देवी ने इन्हें अपना निजी सेक्रेटरी नियुक्त किया तथा मृत्युपर्यंत रत्नाकर जी इस पद पर रहे। अयोध्या में रहते हुए जगन्नाथदास रत्नाकर की कार्य-प्रतिभा समय-समय पर विकास के अवसर पाती रही। महारानी जगदंबा देवी की कृपा से उनकी काव्य कृति 'गंगावतरण' सामने आई। इन्होंने हिन्दी काव्य का अभ्यास प्रारंभ किया और ब्रज भाषा में काव्य रचना की।

लेखन कार्य

जगन्नाथदास 'रत्नाकर' हिन्दी लेखन की ओर उस समय प्रवृत्त हुए, जब खड़ी बोली हिन्दी को काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठापित करने का व्यापक अभियान चल रहा था। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, श्रीधर पाठक, पं. नाथूराम शंकर शर्मा जैसे लोग खड़ी बोली हिन्दी को भारी समर्थन दे रहे थे, लेकिन काव्य भाषा की बदलती लहर रत्नाकर जी के ब्रज भाषा-प्रेम को अपदस्थ नहीं

कर सकी। वे ब्रज भाषा का आँचल छोड़कर खड़ी बोली के पाले में जाने को किसी भी तरह तैयार नहीं हुए। जब उनके समकालीन खड़ी बोली के परिष्कार और परिमार्जन में संलग्न थे, तब वे ब्रज भाषा की त्रुटियों का परिष्कार कर साहित्यिक ब्रज भाषा के रूप की साज-सँवार कर रहे थे। उन्होंने ब्रज भाषा का नए शब्दों, मुहावरों से ऐसाशृंगार किया कि वे सूरदास, पद्माकर और घनानंद की ब्रज भाषा से अलग केवल उनकी ब्रज भाषा बन गई, जिसमें उर्दू और फारसी की रवानगी, संस्कृत का आभिजात्य और लोक भाषा की शक्ति समा गई। जिसके एक-एक वर्ण में एक-एक शब्द में और एक-एक पर्याय में भाव लोक को चित्रित करने की अदम्य क्षमता है।

कवित्त

जगन्नाथदास 'रत्नाकर' की संवेदनशीलता ने बचपन में ही कविता में ढलना शुरू कर दिया था। विद्यार्थी जीवन में ही उन्होंने उर्दू व फारसी के साथ हिन्दी में कवित्त लिखना शुरू कर दिया था। वे 'जकी' उपनाम से उर्दू शायरी करते थे। बाद में उन्होंने ब्रज भाषा काव्य को ही अपना क्षेत्र बना लिया। काव्य सृजन के साथ-साथ उन्होंने अपनी पठन रुचि को भी बराबर विकसित किया। वे साहित्य, दर्शन, अध्यात्म, पुराण-सब पढ़ डालते। रत्नाकर जी का भावों का वैभव है। उनके काव्य-विषय विशुद्ध पौराणिक हैं। आपने इन कथानकों में नवीनता भरकर उन्हें नवीन रूप प्रदान किया। उन्होंने प्रबंध और मुक्तक दोनों प्रकार के काव्य लिखे। वे विशेषत:शृंगार के कवि हैं, परन्तु इनकेशृंगार में न तो रीति काल की अफीमची मादकता है और न नायिका भेद की बारीकी ही है। इनकाशृंगार भक्ति-परक होकर मर्यादित रूप में सामने आया। विशुद्धशृंगार में भी हृदय की अनुभूतिपूर्ण भावनाओं ही का तीव्र वेग है। राधा-कृष्ण के हृदय में स्वाभाविक प्रेम के उदय पर रत्नाकर जी की कलम का एक दृष्टव्य–

आवन लगी है दिन द्वैक ते हमारे धाम,
रहे बिनु काम काज आई अरुझाई है।
कहैं रत्नाकर खिलौननी सम्हारि राखि,
बार-बार जननी चितावत कन्हाई है।
देखी सुनु ग्वारिनी किती ब्रजवासिन पै,
राधा सी न और अभिहारिन लखाई है।

हेरत ही हेरत हरयौ तौ है हमारो कछु,
काहि धौं हिरानी पै न परत जनाई है।

विरह, विरहिरिनों के हृदय को विदीर्ण कर देता है। विरह-विपत्ति का झेलना अत्यंत कठिन है। इसी की अनुभूति पूर्ण अवस्था का एक उदाहरण निम्नलिखित है-

पीर सों धीर धरावत वीर, कटाक्ष हूँ कुंतल सेल नहीं है।
ज्वाल न याकी मिटे रत्नाकर, नेह कछू तिल तेल नहीं है।
जानत अंग जो झेलत हैं, यह रंग गुलाल की झेल नहीं है।
थामे थमें न बहें अंसुवा, यह रोयबो है, हंसी-खेल नहीं है।

श्रृंगार रस के पश्चात् जगन्नाथदास 'रत्नाकर' जी के काव्य में वीर रस को प्रमुख स्थान मिला है। करुण रस की सुन्दर व्यंजना 'हरिश्चंद्र' में हुई है। इसके अतिरिक्त वीभत्स तथा वात्सल्य आदि रसों का यथास्थान सफलता से चित्रण हुआ है। रत्नाकर जी को भावों के चित्रण में विशेष सफलता मिली है। क्रोध, हर्ष, उत्साह, शोक, प्रेम, घृणा आदि मानवीय व्यापारों की अभिव्यंजना रत्नाकर जी ने बड़ी सफलता से की है। आधुनिक युग के होते हुए भी रत्नाकर जी ने भक्ति काल एवं रीति काल के आदर्शों को अपनाया। इनके काव्य में भक्ति कवियों के भाव कीसी भावुकता, रसमग्नता तथा रीति कालीन कवियों जैसा शब्द-कौशल तथा चमत्कार प्रियता मिलती है। इनके काव्य पर आधुनिक युग के बुद्धिवाद का भी प्रभाव है। इनकी 'उद्धवशतक', 'गंगावतरण', 'हरिश्चंद्र' आदि रचनायें प्राचीन युग का उच्चादर्श उपस्थित करती हैं।

भाषा-शैली

रत्नाकर जी की काव्य भाषा नवीनता से परिपूर्ण है। उन्होंने ब्रज भाषा को संयत और परिष्कृत रूप प्रदान किया है। ब्रज भाषा के अप्रचलित प्रयोगों को उन्होंने सर्वथा छोड़ दिया। इस प्रकार ब्रज भाषा को खड़ी बोली के समान प्रतिष्ठित करने का उनका सराहनीय प्रयास रहा। उनकी शब्द योजना सर्वथा दोष मुक्त है। भाषा क्लिष्ट भावों की चेरी बन कर चलती है। इसमें इतनी सरलता और स्वाभाविकता है कि भावों को समझने में कठिनाई नहीं पड़ती। भाषा में ओज और माधुर्य गुण मिलता है। इसमें कहीं भी शिथिलता नहीं है। अनुप्रास योजना भाषा को स्वाभाविकता प्रदान करती है। रत्नाकर जी की कविता में संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग खुलकर हुआ है, परन्तु इससे उनकी भाषा

में कृत्रिमता और शिथिलता नहीं आने पायी। साहित्यिक स्वरूप में घनानंद की भाषा ही रत्नाकर जी की भाषा की समता कर सकती है। रत्नाकर जी को 'आधुनिक ब्रज भाषा का पद्माकर' कहा जा सकता है। उन्होंने जिस शैली को अपनाया, उसमें मानवीय व्यापारों को सफलतापूर्वक चित्रित किया गया है। उनकी शैली में सर्वत्र ही कलात्मकता और स्वाभाविकता मिलती है।

हिन्दी साहित्य निर्माता

हिन्दी साहित्य में रत्नाकर जी एक निर्माता के रूप में स्मरण करने योग्य हैं। ये नवीन और प्राचीन को साथ लेकर चले हैं। इन्होंने आधुनिक हिन्दी साहित्य के तीनों काल देखे थे, पर किसी भी युग विशेष से प्रभावित नहीं हो सके। द्विवेदी युग में होने वाली खड़ी बोली के आन्दोलन ने इनको तनिक भी आकर्षित नहीं किया और ये ब्रज भाषा की उपासना-आराधना में लगे रहे। रत्नाकर जी हिन्दी के स्वर्ण-युग (मध्य युग) के पुजारी थे।

साहित्यिक विशेषताएँ

जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने भक्ति काल की भाव प्रवणता और रीति काल की शृंगारिकता को अपनी कविता के नए बाने में सजाया। उन्होंने भक्ति भावना से समन्वित कविताएँ भी लिखीं, वीरों के वृत्तांत भी लिखे, नीति को भी कविता में उतारा, लेकिन उनका मन मूलतः शृंगारिकता की अभिव्यक्ति में ही अधिक रमा है और इस शृंगारिकता की खबी यह रही कि इसके अंतर्गत भक्ति, स्नेह, प्रेम, वात्सल्य सभी का समाहार हो गया। उनका ग्रंथ 'उद्धवशतक' मानव मन की अद्भुत चित्रशाला बनकर सामने आया। शृंगार रस के निरुपण में उनका कोई भी समकालीन उनके समक्ष खड़ा नहीं किया जा सकता। शृंगार के दोनों पक्षों के निरुपण में जगह-जगह तीव्र भावावेश के क्षणों में ऐसा लगता है मानो कवि स्वयं ही द्रविभूत होकर कविता बन उपस्थित हुआ हो। भाव-चित्रों के इस शिल्पी ने 'उद्धवशतक' में अनुभवों की योजना, मूक-मौन व्यजंना और रसासिक्त मर्मस्पर्शी सूक्तियों का अनोखा उदाहरण प्रस्तुत किया है। इस कृति का ताना-बाना भावुकता के अतिरेक से पैदा होने वाले कृत्रिम उद्वेग से नहीं, बल्कि हृदय की सच्ची पुकार से बुना गया है, जहाँ विरहणी ब्रजांगनाओं के आँसुओं में प्रेम की स्निग्धता, अनुभूति की आर्द्रता उनके विश्वास में संयम की धार भी है।

जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने अपनी कृतियों से सामर्थ्य का झंडा ऊँचा कर दिखाया है, जिसमें शब्द और अर्थ एक हो गये हैं, जहाँ शब्द अपने आप बोलते हैं, मानो शब्द का अर्थ-विधान ही अपने पट खोलता चलता हो। उन्होंने अलंकारों के बड़े ही संतुलित और अपेक्षित प्रयोगों द्वारा भाव-व्यजंना को उत्कर्ष दिया है। उनके सांगरूपक तो हिन्दी में विरले ही हैं। परंपरा की कई लीकों से हटकर लोकोक्तियों और मुहावरों का अलग अंदाज है। रीति काव्य परंपरा का प्रेम और ब्रज भाषा को उनकी दृष्टि की सीमा भले ही माना जाये, लेकिन यह ब्रज भाषा के प्रति अपूर्व निष्ठा थी, जो ब्रज भाषा को अपने सशक्त मानदंडो में सुरक्षित रखना चाहती थी। सामयिक आंदोलनों से परे रहकर उन्होंने ब्रज भाषा साहित्य का परिष्कार करने और मानवीय अंतर्मन का कोना-कोना झाँकने में अपनी शक्ति लगा दी। नारी मन का कोई छोर ऐसा नहीं बचा, जिसे उनके शब्दों के कोमल और तीव्र स्पर्श ने छुआ न हो।

निधन

सन् 1930, कलकत्ता में हुए 'अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य' के जगन्नाथजी अध्यक्ष नियुक्त हुए थे। ब्रज भाषा के कवियों में आधुनिक कवियों के तौर पर ये सर्वथा विशिष्ट हैं। 22 जून, 1932 को इनकी मृत्यु के पश्चात् 'कविवर बिहारी' शीर्षक ग्रंथ की रचना का प्रकाशन इनके पौत्र रामकृष्ण ने किया था। मरणोपरांत 'सूरसागर' सम्पादित ग्रंथ का प्रकाशन आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के निरीक्षण में हुआ।

5

रामनरेश त्रिपाठी

रामनरेश त्रिपाठी (जन्म- 4 मार्च, 1881, कोइरीपुर, जौनपुर, उत्तर प्रदेश, मृत्यु- 16 जनवरी, 1962, प्रयाग) प्राक्छायावादी युग के महत्त्वपूर्ण कवि थे, जिन्होंने राष्ट्रप्रेम की कविताएँ भी लिखीं। इन्होंने कविता के अलावा उपन्यास, नाटक, आलोचना, हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास तथा बालोपयोगी पुस्तकें भी लिखीं। इनकी मुख्य काव्य कृतियाँ हैं- 'मिलन, 'पथिक, 'स्वप्न तथा 'मानसी। रामनरेश त्रिपाठी ने लोक-गीतों के चयन के लिए कश्मीर से कन्याकुमारी और सौराष्ट्र से गुवाहाटी तक सारे देश का भ्रमण किया। 'स्वप्न' पर इन्हें हिंदुस्तान अकादमी का पुरस्कार मिला।

जीवन परिचय

'हे प्रभो! आनन्ददाता ज्ञान हमको दीजिए' जैसा प्रेरणादायी गीत रचकर, प्रार्थना के रूप में स्कूलों में छात्रों व शिक्षकों की वाणी में बसे, महाकवि पंडित रामनरेश त्रिपाठी साहित्य के आकाश के चमकीले नक्षत्र थे। रामनरेश त्रिपाठी का जन्म जिला जौनपुर के कोइरीपुर नामक गाँव में 4 मार्च, सन् 1881 ई. में एक कृषक् परिवार में हुआ था। उनके पिता 'पंडित रामदत्त त्रिपाठी' परम धर्म व सदाचार परायण ब्राह्मण थे। पंडित रामदत्त त्रिपाठी भारतीय सेना में सूबेदार के पद पर रह चुके थे, उनका रक्त पंडित रामनरेश त्रिपाठी की रगों में धर्मनिष्ठा, कर्त्तव्यनिष्ठा व राष्ट्रभक्ति की भावना के रूप में बहता था। उन्हें अपने परिवार

से ही निर्भीकता और आत्म-विश्वास के गुण मिले थे। पंडित त्रिपाठी की प्रारम्भिक शिक्षा गाँव के प्राइमरी स्कूल में हुई। जूनियर कक्षा उत्तीर्ण कर हाई स्कूल वह निकटवर्ती जौनपुर जिले में पढ़ने गए मगर वह हाई स्कूल की शिक्षा पूरी नहीं कर सके। पिता से अनबन होने पर अट्ठारह वर्ष की आयु में वह कलकत्ता चले गए।

हे प्रभु आनन्ददाता की रचना

पंडित त्रिपाठी में कविता के प्रति रुचि प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करते समय जाग्रत हुई थी। वह कलकत्ता में संक्रामक रोग हो जाने की वजह से अधिक समय तक नहीं रह सके। वह स्वास्थ्य सुधार के लिए एक व्यक्ति की सलाह मानकर जयपुर के सीकर ठिकाना स्थित फतेहपुर ग्राम में 'सेठ रामवल्लभ नेवरिया' के पास चले गए। यह एक संयोग ही था कि मरणासन्न स्थिति में वह अपने घर परिवार में न जाकर सुदूर अपरिचित स्थान राजपूताना के एक अजनबी परिवार में जा पहुँचे जहाँ शीघ्र ही इलाज व स्वास्थ्यप्रद जलवायु पाकर रोगमुक्त हो गए। पंडित त्रिपाठी ने सेठ रामवल्लभ के पुत्रों की शिक्षा-दीक्षा की जिम्मेदारी को कुशलतापूर्वक निभाया। इस दौरान उनकी लेखनी पर मां सरस्वती की मेहरबानी हुई और उन्होंने "हे प्रभो! आनन्ददाता.." जैसी बेजोड़ रचना कर डाली जो आज भी अनेक स्कूलों में प्रार्थना के रूप में गाई जाती है।

साहित्य साधना की शुरुआत

पंडित त्रिपाठी की साहित्य साधना की शुरुआत फतेहपुर में होने के बाद उन्होंने उन दिनों तमाम छोटे-बड़े बालोपयोगी काव्य संग्रह, सामाजिक उपन्यास और हिन्दी महाभारत लिखे। उन्होंने हिन्दी तथा संस्कृत के सम्पूर्ण साहित्य का गहन अध्ययन किया। पंडित त्रिपाठी ज्ञान एवं अनुभव की संचित पूंजी लेकर वर्ष 1915 में पुण्यतीर्थ एवं ज्ञानतीर्थ प्रयाग गए और उसी क्षेत्र को उन्होंने अपनी कर्मस्थली बनाया। उन्होंने थोड़ी पूंजी से प्रकाशन का व्यवसाय भी आरम्भ किया। पंडित त्रिपाठी ने गद्य और पद्य दोनों में रचनाएँ की तथा मौलिकता के नियम को ध्यान में रखकर रचनाओं को अंजाम दिया। हिन्दी जगत में वह मार्गदर्शी साहित्यकार के रूप में अवरित हुए और सारे देश में लोकप्रिय हो गए।

हिन्दी के प्रथम एवं सर्वोत्कृष्ट राष्ट्रीय खण्ड काव्य "पथिक" की रचना उन्होंने वर्ष 1920 में 21 दिन में की। इसके अतिरिक्त उनके प्रसिद्ध मौलिक

खण्ड काव्यों में "मिलन" और "स्वप्न" भी शामिल हैं। उन्होंने बड़े परिश्रम से 'कविता कौमुदी' के सात विशाल एवं अनुपम संग्रह-ग्रंथों का भी सम्पादन एवं प्रकाशन किया। पंडित त्रिपाठी कलम के धनी ही नहीं बल्कि कर्मशूर भी थे। महात्मा गाँधी के निर्देश पर त्रिपाठी जी हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रचार मंत्री के रूप में हिन्दी जगत के दूत बनकर दक्षिण भारत गए थे। वह पक्के गांधीवादी देशभक्त और राष्ट्र सेवक थे। स्वाधीनता संग्राम और किसान आन्दोलनों में भाग लेकर वह जेल भी गए। पंडित त्रिपाठी को अपने जीवन काल में कोई राजकीय सम्मान तो नहीं मिला पर उससे भी कही जयादा गौरवपद लोक सम्मान तथा अक्षय यश उन पर अवश्य बरसा।

स्वच्छन्दतावादी कवि

रामनरेश त्रिपाठी स्वच्छन्दतावादी भावधारा के कवि के रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं। इनसे पूर्व श्रीधर पाठक ने हिन्दी कविता में स्वच्छन्दतावाद (रोमांटिसिज्म) को जन्म दिया था। रामनरेश त्रिपाठी ने अपनी रचनाओं द्वारा उक्त परम्परा को विकसित किया और सम्पन्न बनाया। देश प्रेम तथा राष्ट्रीयता की अनुभूतियाँ इनकी रचनाओं का मुख्य विषय रही हैं। हिन्दी कविता के मंच पर ये राष्ट्रीय भावनाओं के गायक के रूप में बहुत लोकप्रिय हुए। प्रकृति-चित्रण में भी इन्हें अदभुत सफलता प्राप्त हुई है।

काव्य कृतियाँ

इनकी चार काव्य कृतियाँ उल्लेखनीय हैं-

'मिलन' (1918 ई.)

'पथिक' (1921 ई.)

'मानसी' (1927 ई.)

'स्वप्न' (1929 ई.)। इनमें 'मानसी' फुटकर कविताओं का संग्रह है और शेष तीनों कृतियाँ प्रेमाख्यानक खण्ड काव्य है।

खण्ड काव्य

रामनरेश त्रिपाठी ने खण्ड काव्यों की रचना के लिए किन्हीं पौराणिक अथवा ऐतिहासिक कथा सूत्रों का आश्रय नहीं लिया है, वरन् अपनी कल्पना शक्ति से मौलिक तथा मार्मिक कथाओं की सृष्टि की है। कवि द्वारा निर्मित होने के कारण

इन काव्यों के चरित्र बड़े आकर्षक हैं और जीवन के साँचे में ढाले हुए जान पड़ते हैं। इन तीनों ही खण्ड काव्यों की एक सामान्य विशेषता यह है कि इनमें देशभक्ति की भावनाओं का समावेश बहुत ही सरसता के साथ किया गया है। उदाहरण के लिए 'स्वप्न' नामक खण्ड काव्य को लिया जा सकता है। इसका नायक वसन्त नामक नवयुवक एक ओर तो अपनी प्रिया के प्रगाढ़ प्रेम में लीन रहना चाहता है, मनोरम प्रकृति के क्रोड़ में उसके साहचर्य-सुख की अभिलाषा करता है और दूसरी ओर समाज का दुख-दर्द दूर करने के लिए राष्ट्रोद्धार की भावना से आन्दोलित होता रहता है। उसके मन में इस प्रकार का अन्तर्द्वन्द बहुत समय तक चलता है। अन्ततः वह अपनी प्रिया के द्वारा प्रेरित किये जाने पर राष्ट्र प्रेम को प्राथमिकता देता है और शत्रुओं द्वारा पदाक्रान्त स्वेदश की रक्षा एवं उद्धार करने में सफल हो जाता है। इस प्रकार की भावनाओं से परिपूर्ण होने के कारण रामनरेश त्रिपाठी के काव्य बहुत दिनों तक राष्ट्रप्रेमी नवयुवकों के कण्ठहार बन हुए थे।

प्रकृति चित्रण

रामनरेश त्रिपाठी अपनी काव्य कृतियों में प्रकृति के सफल चितेरे रहे हैं। इन्होंने प्रकृति चित्रण व्यापक, विशद् और स्वतंत्र रूप में किया है। इनके सहज-मनोरम प्रकृति-चित्रों में कहीं-कहीं छायावाद की झलक भी मिल जाती है। उदाहरण के लिए 'पथिक' की दो पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

"प्रति क्षण नूतन वेष बनाकर रंग-विरंग निराला।
रवि के सम्मुख थिरक रही है नभ में वारिद माला"

भाषा

प्रकृति चित्र हों, या अन्यान्य प्रकार के वर्णन, सर्वत्र रामनरेश त्रिपाठी ने भाषा का बहुत ख्याल रखा है। इनके काव्यों की भाषा शुद्ध, सहज खड़ी बोली है, जो इस रूप में हिन्दी काव्य में प्रथम बार प्रयुक्त दिखाई देती है। इनमें व्याकरण तथा वाक्य-रचना सम्बन्धी त्रुटियाँ नहीं मिलतीं। इन्होंने कहीं-कहीं उर्दू के प्रचलित शब्दों और उर्दू-छन्दों का भी व्यवहार किया है-

"मेरे लिए खड़ा था दुखियों के द्वार पर तू।
मैं बाट जोहता था तेरी किसी चमन में।।
बनकर किसी के आँसू मेरे लिए बहा तू।
मैं देखता तुझे था माशूक के बदन में"।।

कृतियाँ

उपन्यास तथा नाटक

रामनरेश त्रिपाठी ने काव्य-रचना के अतिरिक्त उपन्यास तथा नाटक लिखे हैं, आलोचनाएँ की हैं और टीका भी। इनके तीन उपन्यास उल्लेखनीय हैं-

श्वीरागंना' (1911 ई.),
श्वीरबाला' (1911 ई.),
श्लक्ष्मी' (1924 ई.)

नाट्य कृतियाँ

तीन उल्लेखनीय नाट्य कृतियाँ हैं-
'सुभद्रा' (1924 ई.),
'जयन्त' (1934 ई.),
'प्रेमलोक' (1934 ई.)

रचनाएँ

अन्वेषण

मैं ढूँढता तुझे था, जब कुंज और वन में।
तू खोजता मुझे था, तब दीन के सदन में।
तू 'आह' बन किसी की, मुझको पुकारता था।
मैं था तुझे बुलाता, संगीत में भजन में।
मेरे लिए खड़ा था, दुखियों के द्वार पर तू।
मैं बाट जोहता था, तेरी किसी चमन में।
बनकर किसी के आँसू, मेरे लिए बहा तू।
आँखे लगी थी मेरी, तब मान और धन में।
बाजे बजाबजा कर, मैं था तुझे रिझाता।
तब तू लगा हुआ था, पतितों के संगठन में।
मैं था विरक्त तुझसे, जग की अनित्यता पर।
उत्थान भर रहा था, तब तू किसी पतन में।
बेबस गिरे हुओं के, तू बीच में खड़ा था।

मैं स्वर्ग देखता था, झुकता कहाँ चरन में।
तूने दिया अनेकों अवसर न मिल सका मैं।
तू कर्म में मगन था, मैं व्यस्त था कथन में।
तेरा पता सिकंदर को, मैं समझ रहा था।
पर तू बसा हुआ था, फरहाद कोहकन में।
क्रीसस की 'हाय' में था, करता विनोद तू ही।
तू अंत में हंसा था, महमुद के रुदन में।
प्रहलाद जानता था, तेरा सही ठिकाना।
तू ही मचल रहा था, मंसूर की रटन में।
आखिर चमक पड़ा तू गाँधी की हड्डियों में।
मैं था तुझे समझता, सुहराब पीले तन में।
कैसे तुझे मिलूँगा, जब भेद इस कदर है।
हैरान होके भगवन, आया हूँ मैं सरन में।
तू रूप कै किरन में सौंदर्य है सुमन में।
तू प्राण है पवन में, विस्तार है गगन में।
तू ज्ञान हिन्दुओं में, ईमान मुस्लिमों में।
तू प्रेम क्रिश्चियन में, तू सत्य है सुजन में।
हे दीनबंधु ऐसी, प्रतिभा प्रदान कर तू।
देखूँ तुझे दृगों में, मन में तथा वचन में।
कठिनाइयों दुखों का, इतिहास ही सुयश है।
मुझको समर्थ कर तू, बस कष्ट के सहन में।
दुख में न हार मानूँ, सुख में तुझे न भूलूँ।
ऐसा प्रभाव भर दे, मेरे अधीर मन में।

हे प्रभु आनंददाता

हे प्रभु आनंददाता ज्ञान हमको दीजिये,
शीघ्र सारे दुर्गुणों को दूर हमसे कीजिए,
लीजिये हमको शरण में, हम सदाचारी बनें,
ब्रह्मचारी, धर्म-रक्षक, वीर व्रत धारी बनें,
हे प्रभु आनंददाता ज्ञान हमको दीजिये...
निंदा किसी की हम किसी से भूल कर भी न करें,
ईर्ष्या कभी भी हम किसी से भूल कर भी न करें,

हे प्रभु आनंददाता ज्ञान हमको दीजिये...
सत्य बोलें, झूठ त्यागें, मेल आपस में करें,
दिव्या जीवन हो हमारा, यश तेरा गाया करें,
हे प्रभु आनंददाता ज्ञान हमको दीजिये...
जाये हमारी आयु हे प्रभु लोक के उपकार में,
हाथ डालें हम कभी न भूल कर अपकार में,
हे प्रभु आनंददाता ज्ञान हमको दीजिये...
कीजिए हम पर कृपा ऐसी हे परमात्मा,
मोह मद मत्सर रहित होवे हमारी आत्मा,
हे प्रभु आनंददाता ज्ञान हमको दीजिये...
प्रेम से हम गुरु जनों की नित्य ही सेवा करें,
प्रेम से हम संस्कृति की नित्य ही सेवा करें,
हे प्रभु आनंददाता ज्ञान हमको दीजिये...
योग विद्या, ब्रह्म विद्या हो अधिक प्यारी हमें,
ब्रह्म निष्ठा प्राप्त कर के सर्व हितकारी बनें,
हे प्रभु आनंददाता ज्ञान हमको दीजिये...

वह देश कौन-सा है

मन मोहनी प्रकृति की गोद में जो बसा है।
सुख स्वर्ग-सा जहाँ है वह देश कौन-सा है।।
जिसका चरण निरंतर रतनेश धो रहा है।
जिसका मुकुट हिमालय वह देश कौन-सा है।।
नदियाँ जहाँ सुधा की धारा बहा रही हैं।
सींचा हुआ सलोना वह देश कौन-सा है।।
जिसके बड़े रसीले फल कंद नाज मेवे।
सब अंग में सजे हैं वह देश कौन-सा है।।
जिसमें सुगंध वाले सुंदर प्रसून प्यारे।
दिन-रात हँस रहे है वह देश कौन-सा है।।
मैदान गिरि वनों में हरियालियाँ लहकती।
आनंदमय जहाँ है वह देश कौन-सा है।।
जिसके अनंत धन से धरती भरी पड़ी है।
संसार का शिरोमणि वह देश कौन-सा है।।

अन्य कृतियाँ

आलोचनात्मक कृतियों के रूप में इनकी दो पुस्तकें 'तुलसीदास और उनकी कविता' तथा 'हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास' विचारणीय हैं। टीकाकार के रूप में अपनी 'रामचरितमानस की टीका' के कारण स्मरण किये जाते हैं। 'तीस दिन मालवीय जी के साथ' त्रिपाठी जी की उत्कृष्ट संस्मरणात्मक कृति है। इनके साहित्यिक कृतित्त्व का एक महत्त्वपूर्ण भाग सम्पादन कार्यों के अंतर्गत आता है। सन् 1925 ई. में इन्होंने हिन्दी, उर्दू, संस्कृत और बांग्ला की लोकप्रिय कविताओं का संकलन और सम्पादन किया। इनका यह कार्य आठ भागों में 'कविता कौमुदी' के नाम से प्रकाशित हुआ है। इसी में एक भाग ग्राम-गीतों का है। ग्राम-गीतों के संकलन, सम्पादन और उनके भावात्मक भाष्य प्रस्तुत करने की दृष्टि से इनका कार्य विशेष रूप से उल्लेखनीय रहा है। ये हिन्दी में इस दिशा में कार्य करने वाले पहले व्यक्ति रहे हैं और इन्हें पर्याप्त सफलता तथा कीर्ति मिली है। 1931 से 1941 ई. तक इन्होंने 'वानर' का सम्पादन तथा प्रकाशन किया था। इनके द्वारा सम्पादित और मौलिक रूप में लिखित बालकोपयोगी साहित्य भी बहुत अधिक मात्रा में उपलब्ध है।

प्रसिद्धि

रामनरेश त्रिपाठी की प्रसिद्धि मुख्यत: इनके कवि-रूप के कारण हुई। ये 'द्विवेदीयुग' और 'छायावाद युग' की महत्त्वपूर्ण कड़ी के रूप में आते हैं। पूर्व छायावाद युग के खड़ी बोली के कवियों में इनका नाम बहुत आदर से लिया जाता है। इनका प्रारम्भिक कार्य-क्षेत्र राजस्थान और इलाहाबाद रहा। इन्होंने अन्तिम जीवन सुल्तानपुर में बिताया।

मृत्यु

रामनरेश त्रिपाठी ने 16 जनवरी, 1962 को अपनी कर्मभूमि प्रयाग में ही अंतिम सांस ली। पंडित त्रिपाठी के निधन के बाद आज उनके गृह जनपद सुलतानपुर में एक मात्र सभागार स्थापित है, जो उनकी स्मृतियों को ताजा करता है।

6

मैथिलीशरण गुप्त

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त (3 अगस्त, 1886-12 दिसम्बर, 1964) हिन्दी के प्रसिद्ध कवि थे। हिन्दी साहित्य के इतिहास में वे खड़ी बोली के प्रथम महत्त्वपूर्ण कवि हैं। उन्हें साहित्य जगत में 'दद्दा' नाम से सम्बोधित किया जाता था। उनकी कृति भारत-भारती (1912), भारत के स्वतन्त्रता संग्राम के समय में काफी प्रभावशाली सिद्ध हुई थी और और इसी कारण महात्मा गांधी ने उन्हें 'राष्ट्रकवि' की पदवी भी दी थी। उनकी जयन्ती 3 अगस्त को हर वर्ष 'कवि दिवस' के रूप में मनाया जाता है। सन् 1954 में भारत सरकार ने उन्हें पद्मभूषण से सम्मानित किया।

महावीर प्रसाद द्विवेदी जी की प्रेरणा से गुप्त जी ने खड़ी बोली को अपनी रचनाओं का माध्यम बनाया और अपनी कविता के द्वारा खड़ी बोली को एक काव्य-भाषा के रूप में निर्मित करने में अथक प्रयास किया। इस तरह ब्रज भाषा जैसी समृद्ध काव्य-भाषा को छोड़कर समय और संदर्भों के अनुकूल होने के कारण नये कवियों ने इसे ही अपनी काव्य-अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। हिन्दी कविता के इतिहास में यह गुप्त जी का सबसे बड़ा योगदान है। घासीराम व्यास जी उनके मित्र थे। पवित्रता, नैतिकता और परंपरागत मानवीय सम्बन्धों की रक्षा गुप्त जी के काव्य के प्रथम गुण हैं, जो 'पंचवटी' से लेकर 'जयद्रथ वध', 'यशोधरा' और 'साकेत' तक में प्रतिष्ठित एवं प्रतिफलित हुए हैं। 'साकेत' उनकी रचना का सर्वोच्च शिखर है।

जीवन परिचय

मैथिलीशरण गुप्त का जन्म 3 अगस्त 1886 में पिता सेठ रामचरण कनकने और माता काशी बाई की तीसरी संतान के रूप में उत्तर प्रदेश में ,झांसी के पास चिरगांव में हुआ। माता और पिता दोनों ही वैष्णव थे। विद्यालय में खेलकूद में अधिक ध्यान देने के कारण पढ़ाई अधूरी ही रह गयी। रामस्वरूप शास्त्री, दुर्गादत्त पंत, आदि ने उन्हें विद्यालय में पढ़ाया। घर में ही हिन्दी, बंगला, संस्कृत साहित्य का अध्ययन किया। मुंशी अजमेरी जी ने उनका मार्गदर्शन किया। 12 वर्ष की अवस्था में ब्रज भाषा में कनकलता नाम से कविता रचना आरम्भ किया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के सम्पर्क में भी आये। उनकी कवितायें खड़ी बोली में मासिक 'सरस्वती' में प्रकाशित होना प्रारम्भ हो गई।

प्रथम काव्य संग्रह 'रंग में भंग' तथा बाद में 'जयद्रथ वध' प्रकाशित हुई। उन्होंने बंगाली के काव्य ग्रन्थ 'मेघनाथ वध', 'ब्रजांगना' का अनुवाद भी किया। सन् 1912 - 1913 ई. में राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत 'भारत-भारती' का प्रकाशन किया। उनकी लोकप्रियता सर्वत्र फैल गई। संस्कृत के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'स्वप्नवासवदत्ता' का अनुवाद प्रकाशित कराया। सन् 1916-17 ई. में महाकाव्य 'साकेत' की रचना आरम्भ की। उर्मिला के प्रति उपेक्षा भाव इस ग्रन्थ में दूर किये। स्वत: प्रेस की स्थापना कर अपनी पुस्तकें छापना शुरू किया। साकेत तथा पंचवटी आदि अन्य ग्रन्थ सन् 1931 में पूर्ण किये। इसी समय वे राष्ट्रपिता गांधी जी के निकट सम्पर्क में आये। 'यशोधरा' सन् 1932 ई. में लिखी। गांधी जी ने उन्हें 'राष्टकवि' की संज्ञा प्रदान की। 16 अप्रैल, 1941 को वे व्यक्तिगत सत्याग्रह में भाग लेने के कारण गिरफ्तार कर लिए गए। पहले उन्हें झाँसी और फिर आगरा जेल ले जाया गया। आरोप सिद्ध न होने के कारण उन्हें सात महीने बाद छोड़ दिया गया। सन् 1948 में आगरा विश्वविद्यालय से उन्हें डी.लिट. की उपाधि से सम्मानित किया गया। 1952-1964 तक राज्यसभा के सदस्य मनोनीत हुये। सन् 1953 ई. में भारत सरकार ने उन्हें पद्म विभूषण से सम्मानित किया। तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने सन् 1962 ई. में अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया तथा हिन्दू विश्वविद्यालय के द्वारा डी.लिट. से सम्मानित किये गये। वे वहाँ मानद प्रोफेसर के रूप में नियुक्त भी हुए। 1954 में साहित्य एवं शिक्षा क्षेत्र में पद्म भूषण से सम्मानित किया गया। चिरगाँव में उन्होंने 1911 में साहित्य सदन नाम से स्वयं की प्रैस शुरू की और झांसी में 1954-55 में मानस-मुद्रण की स्थापना की।

इसी वर्ष प्रयाग में 'सरस्वती' की स्वर्ण जयन्ती समारोह का आयोजन हुआ जिसकी अध्यक्षता गुप्त जी ने की। सन् 1963 ई0 में अनुज सियाराम शरण गुप्त के निधन ने अपूर्णनीय आघात पहुंचाया। 12 दिसम्बर 1964 ई. को दिल का दौरा पड़ा और साहित्य का जगमगाता तारा अस्त हो गया। 78 वर्ष की आयु में दो महाकाव्य, 19 खण्ड काव्य, काव्यगीत, नाटिकायें आदि लिखी। उनके काव्य में राष्ट्रीय चेतना, धार्मिक भावना और मानवीय उत्थान प्रतिबिम्बित है। 'भारत भारती' के तीन खण्ड में देश का अतीत, वर्तमान और भविष्य चित्रित है। वे मानववादी, नैतिक और सांस्कृतिक काव्यधारा के विशिष्ट कवि थे। हिन्दी में लेखन आरम्भ करने से पूर्व उन्होंने रसिकेन्द्र नाम से ब्रज भाषा में कविताएँ, दोहा, चौपाई, छप्पय आदि छंद लिखे। ये रचनाएँ 1904-05 के बीच वैश्योपकारक (कलकत्ता), वेंकटेश्वर (बम्बई) और मोहिनी (कन्नौज) जैसी पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई। उनकी हिन्दी में लिखी कृतियाँ इंदु, प्रताप, प्रभा जैसी पत्रिकाओं में छपती रहीं। प्रताप में विदग्ध हृदय नाम से उनकी अनेक रचनाएँ प्रकाशित हुई।

जयन्ती

मध्य प्रदेश के संस्कृति राज्य मंत्री लक्ष्मीकांत शर्मा ने कहा है कि राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की जयंती प्रदेश में प्रतिवर्ष तीन अगस्त को 'कवि दिवस' के रूप में व्यापक रूप से मनायी जायेगी। यह निर्णय राज्य शासन ने लिया है। युवा पीढ़ी भारतीय साहित्य के स्वर्णिम इतिहास से भली-भांति वाकिफ हो सके इस उद्देश्य से संस्कृति विभाग द्वारा प्रदेश में भारतीय कवियों पर केन्द्रित करते हुए अनेक आयोजन करेगा।

कृतियाँ

महाकाव्य- साकेत, यशोधरा।

खण्ड काव्य- जयद्रथ वध, भारत-भारती, पंचवटी, द्वापर, सिद्धराज, नहुष, अंजलि और अर्घ्य, अजित, अर्जन और विसर्जन, काबा और कर्बला, किसान, कुणाल गीत, गुरु तेग बहादुर, गुरुकुल, जय भारत, युद्ध, झंकार, पृथ्वीपुत्र, वक संहार, शकुंतला, विश्व वेदना, राजा प्रजा, विष्णुप्रिया, उर्मिला, लीला, प्रदक्षिणा, दिवोदास, भूमि-भाग

नाटक - रंग में भंग, राजा-प्रजा, वन वैभव, विकट भट, विरहिणी, वैतालिक, शक्ति, सैरन्ध्री ख्क, स्वदेश संगीत, हिड़िम्बा, हिन्दू, चंद्रहास

मैथिलीशरण गुप्त ग्रन्थावली (मौलिक तथा अनुदित समग्र कृतियों का संकलन 12 खण्डों में, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली से प्रकाशित, लेखक-संपादक-डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल, पृष्ठ- 460, मूल्य- 9000, प्रथम संस्करण-2008)

फुटकर रचनाएँ- केशों की कथा, स्वर्गसहोदर, ये दोनों मंगल घट (मैथिलीशरण गुप्त द्वारा लिखी पुस्तक) में संग्रहीत हैं।

अनुदित (मधुप के नाम से)-

संस्कृत- स्वप्नवासवदत्ता, प्रतिमा, अभिषेक, अविमारक (भास) (गुप्त जी के नाटक देखें), रत्नावली (हर्षवर्द्धन)

बंगाली- मेघनाथ वध, विहरिणी बज्रांगना (माइकल मधुसूदन दत्त), प्लासी का युद्ध (नवीन चंद्र सेन)

फारसी- रुबाइयात उमर खय्याम (उमर खय्याम) ख्ब,

काविताओं का संग्रह - उच्छवास

पत्रों का संग्रह - पत्रावली

गुप्त जी के नाटक

उपरोक्त नाटकों के अतिरिक्त गुप्त जी ने चार नाटक और लिखे, जो भास के नाटकों पर आधारित थे। निम्न तालिका में भास के अनुदित नाटक और उन पर आधारित गुप्त जी के मौलिक नाटक दिए हुए हैं –

गुप्त जी के मौलिक नाटक	भास जी के अनुदित नाटक
अनघ	स्वप्नवासवदत्ता
चरणदास	प्रतिमा
तिलोत्तमा	अभिषेक
निष्क्रिय प्रतिरोध	आविमारक

काव्यगत विशेषताएँ

गुप्त जी स्वभाव से ही लोकसंग्रही कवि थे और अपने युग की समस्याओं के प्रति विशेष रूप से संवेदनशील रहे। उनका काव्य एक ओर वैष्णव भावना से परिपोषित था, तो साथ ही जागरण व सुधार युग की राष्ट्रीय नैतिक चेतना से अनुप्राणित भी था। लाला लाजपत राय, बाल गंगाधर तिलक, विपिनचंद्र पाल, गणेश शंकर विद्यार्थी और मदनमोहन मालवीय उनके आदर्श रहे। महात्मा गांधी के भारतीय राजनीतिक जीवन में आने से पूर्व ही गुप्त जी का युवा मन गरम

दल और तत्कालीन क्रान्तिकारी विचारधारा से प्रभावित हो चुका था। 'अनघ' से पूर्व की रचनाओं में, विशेषकर जयद्रथ-वध और भारत-भारती में कवि का क्रान्तिकारी स्वर सुनाई पड़ता है। बाद में महात्मा गांधी, राजेन्द्र प्रसाद, और विनोबा भावे के सम्पर्क में आने के कारण वह गांधीवाद के व्यावहारिक पक्ष और सुधारवादी आन्दोलनों के समर्थक बने।

गुप्त जी के काव्य की विशेषताएँ, इस प्रकार उल्लेखित की जा सकती हैं -

(1) राष्ट्रीयता और गांधीवाद की प्रधानता
(2) गौरवमय अतीत के इतिहास और भारतीय संस्कृति की महत्ता
(3) पारिवारिक जीवन को भी यथोचित् महत्ता
(4) नारी मात्र को विशेष महत्त्व
(5) प्रबन्ध और मुक्तक दोनों में लेखन
(6) शब्द शक्तियों तथा अलंकारों के सक्षम प्रयोग के साथ मुहावरों का भी प्रयोग
(7) पतिवियुक्ता नारी का वर्णन

राष्ट्रीयता तथा गांधीवाद

मैथिलीशरण गुप्त के जीवन में राष्ट्रीयता के भाव कूट-कूट कर भर गए थे। इसी कारण उनकी सभी रचनाएं राष्ट्रीय विचारधारा से ओत-प्रोत है। वे भारतीय संस्कृति एवं इतिहास के परम भक्त थे। परन्तु अन्धविश्वासों और खोखले आदर्शों में उनका विश्वास नहीं था। वे भारतीय संस्कृति की नवीनतम रूप की कामना करते थे।

गुप्त जी के काव्य में राष्ट्रीयता और गांधीवाद की प्रधानता है। इसमें भारत के गौरवमय अतीत के इतिहास और भारतीय संस्कृति की महत्ता का ओजपूर्ण प्रतिपादन है। आपने अपने काव्य में पारिवारिक जीवन को भी यथोचित् महत्ता प्रदान की है और नारी मात्र को विशेष महत्त्व प्रदान किया है। गुप्त जी ने प्रबंध काव्य तथा मुक्तक काव्य दोनों की रचना की। शब्द शक्तियों तथा अलंकारों के सक्षम प्रयोग के साथ मुहावरों का भी प्रयोग किया है।

भारत- भारती में देश की वर्तमान दुर्दशा पर क्षोभ प्रकट करते हुए कवि ने देश के अतीत का अत्यंत गौरव और श्रद्धा के साथ गुणगान किया। भारत श्रेष्ठ था, है और सदैव रहेगा का भाव इन पंक्तियों में गुंजायमान है-

भू-लोक का गौरव, प्रकृति का पुण्य लीला-स्थल कहाँ?
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगाजल कहाँ?
संपूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है?
उसका कि जो ऋषि भूमि है, वह कौन, भारतवर्ष है।

गौरवमय अतीत के इतिहास और भारतीय संस्कृति की महत्ता

एक समुन्नत, सुगठित और सशक्त राष्ट्रीय नैतिकता से युक्त आदर्श समाज, मर्यादित एवं स्नेहासिक्त परिवार और उदात्त चरित्र वाले नर-नारी के निर्माण की दिशा में उन्होंने प्राचीन आख्यानों को अपने काव्य का वर्ण्य विषय बनाकर उनके सभी पात्रों को एक नया अभिप्राय दिया है। जयद्रथवध, साकेत, पंचवटी, सैरन्ध्री, बक संहार, यशोधरा, द्वापर, नहुष, जयभारत, हिडिम्बा, विष्णुप्रिया एवं रत्नावली आदि रचनाएं इसके उदाहरण हैं।

दार्शनिकता

दर्शन की जिज्ञासा आध्यात्मिक चिन्तन से अभिन्न होकर भी भिन्न है। मननशील आर्यसुधियों की यह एक विशिष्ट चिन्तन प्रक्रिया है और उनके तर्कपूर्ण सिद्धान्त ही दर्शन है। इस प्रकार आध्यात्मिकता यदि सामान्य चिन्तन है तो षडदर्शन ब्रह्म जीव, जगत आदि का विशिष्ट चिन्तन, अतः दार्शनिक चिन्तन की तीन मुख्य दिशाएँ हैं - ब्रह्म, जीव, जगत। गुप्त जी का दर्शन उनके कलाकार के व्यक्तित्त्व पक्ष का परिणाम न होकर सामाजिक पक्ष का अभिव्यक्तिकरण है। वे बहिर्जीवन के दृष्टा और व्याख्याता कलाकार हैं, अन्तर्मुखी कलाकार नहीं। कर्मशीलता उनके दर्शन की केन्द्रस्थ भावना है। साकेत में भी वे राम के द्वारा कहलाते हैं-

सन्देश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।

राम अपने कर्म के द्वारा इस पृथ्वी को ही स्वर्ग जैसी सुन्दर बनाना चाहते हैं। राम के वनगमन के प्रसंग पर सबके व्याकुल होने पर भी राम शान्त रहते हैं, इससे यह ज्ञान होता है कि मनुष्य जीवन में अनन्त उपेक्षित प्रसंग निर्माण होते हैं, अतः उसके लिए खेद करना मूर्खता है। राम के जीवन में आनेवाली सम तथा विषम परिस्थितियों के अनुकूल राम की मनःस्थिति का सहज स्वाभाविक दिग्दर्शन करते हुए भी एक धीरोदात्त एवं आदर्श पुरुष के रूप में राम का

चरित्रांकन गुप्त जी ने किया है। लक्ष्मण भी जीवन की प्रत्येक प्रतिक्रिया में लोकोपकार पर बल देते हैं। उनकी साधना 'शिवम्' की साधना है, अतः वे अत्यन्त उदारता से कहते हैं-

मैं मनुष्यता को सुरत्व की
जननी भी कह सकता हूँ
किन्तु पतित को पशु कहना भी
कभी नहीं सह सकता हूँ॥

रहस्यात्मकता एवं आध्यात्मिकता

गुप्त जी के परिवार में वैष्णव भक्ति भाव प्रबल था। प्रतिदिन पूजा-पाठ, भजन, गीता पढ़ना आदि सब होता था। यही कारण है कि गुप्त जी के जीवन में भी यह आध्यात्मिक संस्कार बीज के रूप में पड़े हुए थे, जो धीरे-धीरे अंकुरित होकर रामभक्ति के रूप में वटवृक्ष हो गया।

'साकेत' की भूमि का में निर्गुण परब्रह्म सगुण साकार के रूप में अवतरित होता है। आत्मश्रय प्राप्त कवि के लिए जीवन में ही मुक्ति मिल जाने से मृत्यु न तो विभीषिका रह जाती है और न उसे भय या शोक ही दे सकती है। गुप्त जी ने 'साकेत' में राम के प्रति अपनी भक्ति भावना प्रकट की है। 'साकेत' में मुख्य रूप से उनका प्रयोजन उर्मिला की व्यथा को चित्रित करना था। पर साथ में ही राम की भक्ति भावना के गुण गाने में पीछे नहीं हटे। साकेत में हम जिस रामचरित के दर्शन करते हैं उसमें आधुनिकता की छाप अवश्य है, किन्तु उसकी आत्मा में राम के आधि दैविक रूप की ही झाँकी है और 'साकेत' की मूल प्रेरणा है। जिस युग में राम के व्यक्तित्त्व को ऐतिहासिक महापुरुष या मर्यादा पुरुषोत्तम तक सीमित मानने का आग्रह चल रहा था गुप्त जी की वैष्णव भक्ति ने आकुल होकर पुकार की थी।

राम, तुम मानव हो? ईश्वर नहीं हो क्या?
विश्व में रमे हुए नहीं सभी कही हो क्या?
तब मैं निरीश्वर हूँ, ईश्वर क्षमा करे,
तुम न रमो तो मन तुम में रमा करे।

'साकेत' पूजा का एक फूल है, जो आस्तिक कवि ने अपने इष्टदेव के चरणों पर चढ़ाया है। राम के चित्रांकन में गुप्त जी ने जीवन के रहस्य को उद्‌घाटित किया है। राम के जन्म हेतु उन्होंने कहा है-

किसलिए यह खेल प्रभु ने है किया।
मनुज बनकर मानवी का पय पिया।
भक्त वत्सलता इसी का नाम है।
और वह लोकेश लीला धाम है।।

नारी मात्र की महत्ता का प्रतिपादन

नारियों की दुरावस्था तथा दु:खियों, दीनों और असहायों की पीड़ा ने उसके हृदय में करुणा के भाव भर दिये थे। यही कारण है कि उनके अनेक काव्य ग्रंथों में नारियों की पुनर्प्रतिष्ठा एवं पीड़ित के प्रति सहानुभूति झलकती है। नारियों की दशा को व्यक्त करती उनकी ये पंक्तियां पाठकों के हृदय में करुणा उत्पन्न करती है-

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।

पतिवियुक्ता नारी का वर्णन

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी के कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता के विमर्श ने गुप्त जी को साकेत महाकाव्य लिखने के लिए प्रेरित किया। भारत वर्ष में गूंजे हमारी भारती की प्रार्थना करने वाले कवि कालान्तर में, विरहिणी नारियों के दु:ख से द्रवित हो जाते हैं। परिवार में रहती हुई पतिवियुक्ता नारी की पीड़ा को जिस शिद्दत के साथ गुप्त जी अनुभव करते हैं और उसे जो बानगी देते हैं, वह आधुनिक साहित्य में दुर्लभ है। उनकी वियोगिनी नारी पात्रों में उर्मिला (साकेत महाकाव्य), यशोधरा (काव्य) और विष्णुप्रिया खण्ड काव्य प्रमुख है। उनका करुण विप्रलम्भ तीनों पात्रों में सर्वाधिक मर्मस्पर्शी बन पड़ा है। उनके जीवन संघर्ष, उदात्त विचार और आचरण की पवित्रता आदि मानवीय जिजीविषा और सोधेश्यता को प्रमाणित करते हैं। गुप्त जी की तीनों विरहिणी नायिकाएं विरह ताप में तपती हुई भी अपने तन-मन को भस्म नहीं होने देती वरण कुन्दन की तरह उज्ज्वल वर्णी हो जाती हैं।

साकेत की उर्मिला रामायण और रामचरितमानस की सर्वाधिक उपेक्षित पात्र है। इस विरहिणी नारी के जीवन वृत्त और पीड़ा की अनुभूतियों का विशद् वर्णन आख्यानकारों ने नहीं किया है। उर्मिला लक्ष्मण की पत्नी है और अपनी चारों बहनों में वही एक मात्र ऐसी नारी है, जिसके हिस्से में चौदह वर्षों के लिए

पतिवियुक्ता होने का दु:ख मिला है। उनकी अन्य तीनों बहनों में सीता, राम के साथ, मांडवी भरत के सान्निध्य में तथा श्रुतिकीर्ति शत्रुान के संग जीवनयापन करती हैं। उर्मिला का जीवन वृत्त और उसकी विरह-वेदना सर्वप्रथम मैथिलीशरण गुप्त जी की लेखनी से साकार हुई हैं।

गुप्त जी ने अपने काव्य का प्रधान पात्र राम और सीता को न बनाकर लक्ष्मण, उर्मिला और भरत को बनाया है। गुप्त जी ने साकेत में उर्मिला के चरित्र को जो विस्तार दिया है, वह अप्रतिम है। कवि ने उसे 'मूर्तिमति ऊषा', 'सुवर्ण की सजीव प्रतिमा', 'कनक लतिका', 'कल्पशिल्पी की कला' आदि कहकर उसके शारीरिक सौन्दर्य की अनुपम झांकी प्रस्तुत की है। उर्मिला प्रेम एवं विनोद से परिपूर्ण हास-परिहासमयी रमणी है।

मैथिलीशरण गुप्त को आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का मार्गदर्शन प्राप्त था। आचार्य द्विवेदी उन्हें कविता लिखने के लिए प्रेरित करते थे, उनकी रचनाओं में संशोधन करके अपनी पत्रिका 'सरस्वती' में प्रकाशित करते थे। मैथिलीशरण गुप्त की पहली खड़ी बोली की कविता 'हेमन्त' शीर्षक से सरस्वती (1907 ई0) में छपी थी।

प्रकृति वर्णन

गुप्त जी द्वारा रचित खण्ड काव्य पंचवटी में सहज वन्य-जीवन के प्रति गहरा अनुराग और प्रकृति के मनोहारी चित्र हैं। उनकी निम्न पंक्तियाँ आज भी कविता प्रेमियों के मानस पटल पर सजीव हैं-

चारुचंद्र की चंचल किरणें, खेल रहीं हैं जल थल में,
स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है अवनि और अम्बरतल में।
पुलक प्रकट करती है धरती, हरित तृणों की नोकों से,
मानों झीम रहे हैं तरु भी, मन्द पवन के झोंकों से।
पंचवटी की छाया में है, सुन्दर पर्ण-कुटीर बना,
जिसके सम्मुख स्वच्छ शिला पर, धीर-वीर निर्भीकमना,
जाग रहा यह कौन धनुर्धर, जब कि भुवन भर सोता है?
भोगी कुसुमायुध योगी-सा, बना दृष्टिगत होता है।
किस व्रत में है व्रती वीर यह, निद्रा का यों त्याग किये,
राजभोग्य के योग्य विपिन में, बैठा आज विराग लिये।

बना हुआ है प्रहरी जिसका, उस कुटीर में क्या धन है,
जिसकी रक्षा में रत इसका, तन है, मन है, जीवन है!
मर्त्यलोक-मालिन्य मेटने, स्वामि-संग जो आई है,
तीन लोक की लक्ष्मी ने यह, कुटी आज अपनाई है।
वीर-वंश की लाज यही है, फिर क्यों वीर न हो प्रहरी,
विजन देश है निशा शेष है, निशाचरी माया ठहरी।
कोई पास न रहने पर भी, जन-मन मौन नहीं रहताय
आप आपकी सुनता है वह, आप आपसे है कहता।
बीच-बीच में इधर-उधर निज दृष्टि डालकर मोदमयी,
मन ही मन बातें करता है, धीर धनुर्धर नई नई
क्या ही स्वच्छ चाँदनी है यह, है क्या ही निस्तब्ध निशाय
है स्वच्छन्द-सुमंद गंध वह, निरानंद है कौन दिशा?
बंद नहीं, अब भी चलते हैं, नियति-नटी के कार्य-कलाप,
पर कितने एकान्त भाव से, कितने शांत और चुपचाप!
है बिखेर देती वसुंधरा, मोती, सबके सोने पर,
रवि बटोर लेता है उनको, सदा सवेरा होने पर।
और विरामदायिनी अपनी, संध्या को दे जाता है,
शून्य श्याम-तनु जिससे उसका, नया रूप झलकाता है।
सरल तरल जिन तुहिन कणों से, हँसती हर्षित होती है,
अति आत्मीया प्रकृति हमारे, साथ उन्हींसे रोती है!
अनजानी भूलों पर भी वह, अदय दण्ड तो देती है,
पर बूढों को भी बच्चों-सा, सदय भाव से सेती है।
तेरह वर्ष व्यतीत हो चुके, पर है मानो कल की बात,
वन को आते देख हमें जब, आर्त अचेत हुए थे तात।
अब वह समय निकट ही है जब, अवधि पूर्ण होगी वन की।
किन्तु प्राप्ति होगी इस जन को, इससे बढ़कर किस धन की!
और आर्य को, राज्य-भार तो, वे प्रजार्थ ही धारेंगे,
व्यस्त रहेंगे, हम सब को भी, मानो विवश विसारेंगे।
कर विचार लोकोपकार का, हमें न इससे होगा शोक,
पर अपना हित आप नहीं क्या, कर सकता है यह नरलोक!

भाषा शैली

मैथिलीशरण गुप्त की काव्य भाषा खड़ी बोली है। इस पर उनका पूर्ण अधिकार है। भावों को अभिव्यक्त करने के लिए गुप्त जी के पास अत्यन्त व्यापक शब्दावली है। उनकी प्रारम्भिक रचनाओं की भाषा तत्सम है। इसमें साहित्यिक सौन्दर्य कला नहीं है। 'भारत-भारती' की भाषा में खड़ी बोली की खड़खड़ाहट है, किन्तु गुप्त जी की भाषा क्रमशः विकास करती हुई सरस होती गयी। संस्कृत के शब्द भण्डार से ही उन्होंने अपनी भाषा का भण्डार भरा है, लेकिन 'प्रियप्रवास' की भाषा में संस्कृत बहुला नहीं होने पायी। इसमें प्राकृत रूप सर्वथा उभरा हुआ है। भाव व्यजना को स्पष्ट और प्रभावपूर्ण बनाने के लिए संस्कृत का सहारा लिया गया है। संस्कृत के साथ गुप्त जी की भाषा पर प्रांतीयता का भी प्रभाव है। उनका काव्य भाव तथा कला पक्ष दोनों की दृष्टि से सफल है।

शैलियों के निर्वाचन में मैथिलीशरण गुप्त ने विविधता दिखाई, किन्तु प्रधानता प्रबन्धात्मक इतिवृत्तमय शैली की है। उनके अधिकांश काव्य इसी शैली में हैं- 'रंग में भंग', 'जयद्रथ वध', 'नहुष', 'सिद्धराज', 'त्रिपथक', 'साकेत' आदि प्रबंध शैली में हैं। यह शैली दो प्रकार की है- 'खंड काव्यात्मक' तथा 'महाकाव्यात्मक साकेत महाकाव्य है तथा शेष सभी काव्य खंड काव्य के अंतर्गत आते हैं। गुप्त जी की एक शैली विवरण शैली भी है। 'भारत-भारती' और 'हिन्दू' इस शैली में आते हैं। तीसरी शैली 'गीत शैली' है। इसमें गुप्त जी ने नाटकीय प्रणाली का अनुगमन किया है। 'अनघ' इसका उदाहरण है। आत्मोद्‌गार प्रणाली गुप्त जी की एक और शैली है, जिसमें 'द्वापर' की रचना हुई है। नाटक, गीत, प्रबन्ध, पद्य और गद्य सभी के मिश्रण एक 'मिश्रित शैली' है, जिसमें 'यशोधरा' की रचना हुई है। इन सभी शैलियों में गुप्त जी को समान रूप से सफलता नहीं मिली। उनकी शैली की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें इनका व्यक्तित्त्व झलकता है। पूर्ण प्रवाह है। भावों की अभिव्यक्ति में सहायक होकर उपस्थित हुई हैं।

मैथिलीशरण गुप्त (राष्ट्र कवि)

पंचवटी भारत के महाराष्ट्र के नासिक में गोदावरी नदी के किनारे स्थित विख्यात धार्मिक तीर्थस्थान। त्रेतायुग में लक्ष्मण जी व सीता माता सहित श्रीराम जी ने वनवास के कुछ यहाँ बिताए।

पंचवटी - वनवास के समय वन में राम ने जिस स्थान पर अपना निवास बनाया।

पंचवटी - कोलकाता के पास दक्षिणेश्वर काली मन्दिर जहाँ रामकृष्ण परमहंस ने साधना की।

पंचवटी - मध्य प्रदेश का प्रसिद्ध पर्यटन स्थल

साहित्य मेंरू

पंचवटी - मैथिलीशरण गुप्त की काव्यरचना

यशोधरा

मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित प्रसिद्ध प्रबंध काव्य है जिसका प्रकाशन सन् 1933 ई. में हुआ। अपने छोटे भाई सियारामशरण गुप्त के अनुरोध करने पर मैथिलीशरण गुप्त ने यह पुस्तक लिखी थी। यशोधरा महाकाव्य में गौतम बुद्ध के गृह त्याग की कहानी को केन्द्र में रखकर यह महाकाव्य लिखा गया है। इसमें गौतम बुद्ध की पत्नी यशोधरा की विरहजन्य पीड़ा को विशेष रूप से महत्त्व दिया गया है। यह गद्य-पद्य मिश्रित विधा है जिसे चम्पूकाव्य कहा जाता है।

उद्देश्य

यशोधरा का उद्देश्य है पति-परित्यक्तों यशोधरा के हार्दिक दु:ख की व्यंजना तथा वैष्णव सिद्धांतों की स्थापना। अमिताभ की आभा से चकित भक्तों को अदृश्य यशोधरा की पीड़ा का, मानवीय सम्बंधों के अमर गायक, मानव-सुलभ सहानुभूति के प्रतिष्ठापक मैथिलीशरण गुप्त की अंत: प्रवेशिनी दृष्टि ने ही सर्वप्रथम साक्षात्कार किया। साथ ही 'यशोधरा' के माध्यम से संन्यास पर गृहस्थ प्रधान वैष्णव धर्म की गौरव प्रतिष्ठा की है।

कथानक कथारम्भ गौतम के वैराग्य चिंतन से होता है। जरा, रोग, मृत्यु आदि के दृश्यों से वे भयभीत हो उठते हैं। अमृत तत्त्व की खोज के लिए गौतम पत्नी और पुत्र को सोते हुए छोड़कर 'महाभिनिष्क्रमण' करते हैं। यशोधरा का निरावधि विरह अत्यंत कारुणिक है। विरह की दारुणता से भी अधिक उसको खलता है प्रिय का 'चोरी-चोरी जाना। इसर समझती है परंतु उसे मरण का भी अधिकार नहीं है, क्योंकि उस पर राहुल के पालन-पोषण का दायित्व है। फलत: 'आँचल में दूध' और 'आँखों में पानी' लिए वह जीवनयापन करती है। सिद्धि प्राप्त होने पर बुद्ध लौटते हैं, सब लोग उनका स्वागत करते हैं परंतु मानिनी

यशोधरा अपने कक्ष में रहती हैं। अंततः स्वयं भगवान उसके द्वार पहुँचते हैं और भीख माँगते हैं। यशोधरा उन्हें अपनी अमूल्य निधि राहुल को दे देती है तथा स्वयं भी उनका अनुसरण करती है। इस कथा का पूर्वार्द्ध एवं इतिहास प्रसिद्ध है पर उत्तरार्द्ध कवि की अपनी उर्वर कल्पना की सृष्टि है।

भाषा शैली

'यशोधरा' का प्रमुख रस शृंगार है, शृंगार में भी केवल विप्रलम्भ। संयोग का तो एकांताभाव है। शृंगार के अतिरिक्त इसमें करुण, शांत एवं वात्सल्य भी यथास्थान उपलब्ध हैं। प्रस्तुत काव्य में छायावादी शिल्प का आभास है। उक्ति को अद्‌भुत कौशल से चमत्कृत एवं सप्रभाव बनाया गया है। यशोधरा की भाषा शुद्ध खड़ी बोली है- प्रौढ़ता, कांतिमयता और गीतिकाव्य के उपयुक्त मृदुलता और मसृणता उसके विशेष गुण हैं, इस प्रकार यशोधरा एक उत्कृष्ट रचना सिद्ध होती है।

प्रबंध काव्य

केवल शिल्प की दृष्टि से तो वह 'साकेत' से भी सुंदर है। काव्य-रूप की दृष्टि से भी 'यशोधरा' गुप्त जी के प्रबंध-कौशल का परिचायक है। यह प्रबंध-काव्य है- लेकिन समाख्यानात्मक नहीं। चरित्रोद्‌घाटन पर कवि की दृष्टि केंद्रित रहने के कारण यह नाट्य-प्रबंध है, और एक भावनामयी नारी का चरित्रोद्‌घाटन होने से इसमें प्रगीतात्मकता का प्राधान्य है, अतः 'यशोधरा' को प्रगीतात्मकता नाट्य प्रबंध कहना चाहिए, जो एक सर्वथा परम्परामुक्त काव्य रूप है।

यशोधरा–एक आदर्श नारी

यशोधरा का विरह अत्यंत दारुण है और सिद्धि मार्ग की बाधा समझी जाने का कारण तो उसके आत्म-गौरव को बड़ी ठेस लगती है। परंतु वह नारीत्व को किसी भी अंश में हीन मानने को प्रस्तुत नहीं है। वह भारतीय पत्नी है, उसका अर्धांगी-भाव सर्वत्र मुखर है- 'उसमें मेरा भी कुछ होगा जो कुछ तुम पाओगे।' सब मिलाकर यशोधरा आदर्श पत्नी, श्रेष्ठ माता और आत्म-गौरव सम्पन्न नारी है। परंतु गुप्त जी ने यथासम्भव गौतम के परम्परागत उदात्त चरित्र की रक्षा की है। यद्यपि कवि ने उनके विश्वासों एवं सिद्धान्तों को अमान्य ठहराया है तथापि

उनके चिर प्रसिद्ध रूप की रक्षा के लिए अंत में 'यशोधरा' और 'राहुल' को उनका अनुगामी बना दिया है। प्रस्तुत काव्य में वस्तु के संघटक और विकास में राहुल का समाधिक महत्त्व है। यदि राहुल-सा लाल गोद में न होता तो कदाचित् यशोधरा मरण का ही वरण कर लेती और तब इस 'यशोधरा' का प्रणयन ही क्यों होता। 'यशोधरा' काव्य में राहुल का मनोविकास अंकित है। उसकी बाल सुलभ चेष्टाओं में अद्‌भुत आकर्षण है। समय के साथ-साथ उसकी बुद्धि का विकास भी होता है, जो उसकी उक्तियों से स्पष्ट है। परंतु यह सब एकदम स्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। कहीं-कहीं तो राहुल प्रौंढ़ों के समान तर्क, युक्तिपूर्वक वार्तालाप करता है, जो जन्मजात प्रतिभा सम्पन्न बालक के प्रसंग में भी निश्चय ही अतिरंजना है।

यशोधरा एक चरित्र प्रधान काव्य है। इस ग्रन्थ की रचना का उद्देश्य ही उपेक्षिता यशोधरा के चरित्र को उभारना है। काव्य के नामकरण से ही सिद्ध हो जाता है कि यशोधरा ही इस काव्य की प्रमुख पात्र है। उसी की करुण गाथा को गूंथने के उद्देश्य से गुप्त जी ने इस काव्य की रचना की है। इन पंक्तियों से इस बात का ज्ञात हो जाता है-

अबला जीवन हाय! तुम्हारी येही कहानी--
आँचल में है दूध और आँखों में पानी!

विरहिणी

यशोधरा के विरहिणी रूप पर भी कवि ने ज्यादा प्रकाश डाला है। विरहिणी गोपा रात-दिन आँसू बहाती है। उसे जान पड़ता है कि उसका जन्म केवल रोने के लिए हुआ है। उस अबला जीवन की आँखों में सदैव पानी भरा रहता है और इसीलिए वह अपने पति को नयन-नीर ही देती है।

राहुल के सामने रोने से राहुल को कष्ट होता है, इसीलिए वह उसके सो जाने के बाद ही जी भरकर क्रन्दन करती है। इस प्रकार वह रोते-रोते रात काटती है। उसके नेत्रों से नींद सदा के लिए विदा हो गई है।

गौतम बुद्ध के चले जाने पर यशोधरा अपने पूर्वाराग को स्मरण करती हुई कहती है--

प्रियतम ! तुम श्रुति पथ से आए।
तुम्हें हृदय में रखकर मैं ने अधर-कपाट लगाए।'

उन्माद की स्थिति में यशोधरा 'जाओ मेरे सिर के बाल' कहकर अपने एड़ीचुम्बी सुन्दर केशों को काट डालती है और राहुल को अपने बाहुपाश मैं इतने जोर से जकड़ लेती है कि उसका दम घुटने लगता है।

वास्तव में, वियोग का दुख जब अग्राह्य हो जाता है-- 'मैं उठ धाऊँ।' वह अपने वनमाली को बुलाती है- वह भी जल्दी क्योंकि उसे भय है कि कहीं 'आँखों का पंछी' उनके आने से पूर्व ही न उड़ जाये, किन्तु गोपा को तुरन्त ही बोध होता है कि स्नेह तो जलने के लिए बना है और यह देह सब कुछ सहने के लिए बनी है।

यशोधरा के आँसू इतने मूल्यवान है कि शुद्धोधन उन्हें लेकर 'मुक्ति मुक्ता' तक छोड़ने को तैयार है। विरहिणी यशोधरा व्रत रखती है, फटे-पुराने वस्त्र पहनती है। इस प्रकार राजभोग से वंचित यशोधरा केवल गौतम की चिन्ता में जी रही है। 'न जाने कितनी बरसातें बीत गई' पर गोपा के दिन नहीं फिरे। वह ऊष्मा-सी ठंडी साँसें भरती दु:ख से सुख का मूल्य आँकती है। उसे विश्वास है कि उसके खलने वाले दिन अवश्य कट जायेंगे और खेलने वाले दिन अवश्य आयेंगे और तब वह एक दिन प्रभु का दर्शन अवश्य कर पायेंगे। इसीलिए वह कभी-कभी अपने नयन को व्यर्थ व्याकुल होने से मना करती है क्योंकि उसे ऐसा लगता है कि इस रोने में भी कुछ नहीं रखा है।

अनुरागिनी

अनुरागिनी के रूप में यशोधरा का चरित्र निखर उठा है। उसके चरित्र की विशेषता यह है कि वह अनुरागिनी होते हुए भी मानिनी है। वह अपने पति से जितना अनुराग रखती है उतना भी मान रखती है। वास्तव में वह मीरा की भाँति अपने पति-परमेश्वर की उपासिका है। वैष्णव-भक्ति में मान, दर्प, उपालम्भ आदि को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। यशोधरा का भी कथन है--

भक्त नहीं जाते कहीं, आते हैं भगवान,
यशोधरा के अर्थ है, अब भी अभिमान।
इसी निज राजभवन में।

जननी

यशोधरा का जननी रूप उसके अनुरागिणी रूप से भी अधिक मुखरित है। पति से वियुक्त नारी का एकमात्र संबल उसका पुत्र होता है। यशोधरा

की 'मलिन गूदड़ी का लाल', 'उसके शरीर का अंराग', 'आँखों का अंजन', 'विपक्ति का सहारा', 'जीवन-नैया का खिवैया', 'दुखिनी का सुख', 'उसका भैया', 'उसका राजा' सभी कुछ राहुल है। यदि गौतम ने उसके इस अवलम्ब को भी छीन लिया है तो वह भी श्री गोविन्द वल्लभ पन्त के नाटक 'वरमाला' की नायिका वैशालिनी की तरह दर-दर जंगलों की खाक छानती फिरती। इसके अतिरिक्त उसे सास-ससुर की संवेदना और सहानुभूति प्राप्त न होती, तो वह कभी की काल के गाल में समा गई होती। यशोधरा इसलिए जीती है कि राहुल का भार उसके ऊपर है तथा सास-ससुर की सहानुभूति उसके साथ है।

मानिनी

यशोधरा काव्य में जिस प्रकार यशोधरा का जननी रूप निखरा है उसी प्रकार उसका मानिनी रूप भी। जब भगवान बुद्ध ज्ञायान प्राप्त करके मगध आए तब शुद्धोधन और महाप्रजावती यशोधरा को बहुतेरा समझाते हैं कि उसे अपने पति के दर्शन के लिए प्रस्तुत होना चाहिए। किन्तु वह इसके लिए प्रस्तुत नहीं होती। वह समझती है कि उसने अपने पति का साथ नहीं छोड़ा है। उसके पति ही उससे छिपकर घर से निकल गए, अतः उन्हें ही उसके पास आना चाहिए। जब उसके सास-ससुर उससे मगध चलने का आग्रह करते जाते हैं तो मानिनी यशोधरा आवेश मैं आकर मूर्च्छित हो जाती हैं।

जब गौतम बुद्ध कपिलवस्तु में पधारते हैं तब मानिनी अब वही बैठी है जहाँ पर उसके प्रियतम उसे छोड़कर गए हैं। वह समझाती है कि जब उन्हें इष्ट होगा तब स्वयं आकर या बुलाकर वे उसे अपने चरणों मैं स्थान देंगे। होता भी यही है। स्वयं गौतम बुद्ध को अपनी मानिनी के द्वार पर आना पड़ता है और कहना पड़ता है--

मानिनी मान तजो, लो, अब तो रही तुम्हारी बात।

रंग में भंग

- रंग में भंग (बहुविकल्पी)

रंग में भंग पंचतंत्र की प्रसिद्ध कहानियों में से एक है जिसके रचयिता आचार्य विष्णु शर्मा हैं।

कहानी

एक बार जंगल में पक्षियों की आम सभा हुई। पक्षियों के राजा गरुड़ थे। सभी गरुड़ से असंतुष्ट थे। मोर की अध्यक्षता में सभा हुई। मोर ने भाषण दिया 'साथियों, गरुड़ जी हमारे राजा हैं पर मुझे यह कहते हुए बहुत दुःख होता हैं कि उनके राज में हम पक्षियों की दशा बहुत खराब हो गई हैं। उसका यह कारण हैं कि गरुड़ जी तो यहां से दूर विष्णु लोक में विष्णु जी की सेवा में लगे रहते हैं। हमारी ओर ध्यान देने का उन्हें समय ही नहीं मिलता। हमें अपनी समस्याएं लेकर फरियाद करने जंगली चौपायों के राजा सिंह के पास जाना पड़ता है। हमारी गिनती न तीन में रह गई हैं और न तेरह में। अब हमें क्या करना चाहिए, यही विचारने के लिए यह सभा बुलाई गई है।

हुदहुद ने प्रस्ताव रखा 'हमें नया राजा चुनना चाहिए, जो हमारी समस्याएं हल करे और दूसरे राजाओं के बीच बैठकर हम पक्षियों को जीव जगत् में सम्मान दिलाए।'

मुर्गे ने बांग दी 'कुकडूं कूं। मैं हुदहुद जी के प्रस्ताव का समर्थन करता हूं।

चील ने जोर की सीटी मारी 'मैं भी सहमत हूं।'

मोर ने पंख फैलाए और घोषणा की 'तो सर्वसम्मति से तय हुआ कि हम नए राजा का चुनाव करें, पर किसे बनाएं हम राजा?

सभी पक्षी एक-दूसरे से सलाह करने लगे। काफी देर के बाद सारस ने अपना मुंह खोला 'मैं राजा पद के लिए उल्लू जी का नाम पेश करता हूं। वे बुद्धिमान हैं। उनकी आंखें तेजस्वी हैं। स्वभाव अति गंभीर हैं, ठीक जैसे राजा को शोभा देता हैं।'

हार्नबिल ने सहमति में सिर हिलाते हुए कहा "सारस जी का सुझाव बहुत दूरदर्शितापूर्ण है। यह तो सब जानते हैं कि उल्लू जी लक्ष्मी देवी की सवारी है। उल्लू हमारे राजा बन गए तो हमारा दारिद्रय दूर हो जाएगा।"

लक्ष्मी जी का नाम सुनते ही सब पर जादू सा प्रभाव हुआ। सभी पक्षी उल्लू को राजा बनाने पर राजी हो गए।

मोर बोला 'ठीक हैं, मैं उल्लू जी से प्रार्थना करता हूं कि वे कुछ शब्द बोलें।'

उल्लू ने घुघुआते कहा 'भाइयो, आपने राजा पद पर मुझे बिठाने का निर्णय जो किया हैं उससे मैं गद्‌गद् हो गया हूं। आपको विश्वास दिलाता हूं कि मुझे

आपकी सेवा करने का जो मौका मिला है, मैं उसका सदुपयोग करते हुए आपकी सारी समस्याएं हल करने का भरसक प्रयत्न करुंगा। धन्यवाद।'

पक्षी जनों ने एक स्वर में 'उल्लू महाराज की जय' का नारा लगाया।

कोयलें गाने लगी। चील जाकर कहीं से मनमोहक डिजाइन वाला रेशम का शाल उठाकर ले आई। उसे एक डाल पर लटकाया गया और उल्लू उस पर विराजमान हुए। कबूतर जाकर कपड़ों की रंग-बिरंगी लीरें उठाकर लाए और उन्हें पेड़ की टहनियों पर लटकाकर सजाने लगे। मोरों की टोलियां पेड़ै के चारों ओर नाचने लगी।

मुर्गों व शुतुरमुर्गों ने पेड़ के निकट पंजों से मिट्टी खोद-खोदकर एक बडा हवन तैयार किया। दूसरे पक्षी लाल रंग के फूल ला-लाकर कुंड में ढेरी लगाने लगे। कुंड के चारों ओर आठ-दस तोते बैठकर मंत्र पढ़ने लगे।

बया चिड़ियों ने सोने व चांदी के तारों से मुकुट बुन डाला तथा हंस मोती लाकर मुकुट में फिट करने लगे। दो मुख्य तोते पुजारियों ने उल्लू से प्रार्थना की 'हे पक्षी श्रेष्ठ, चलिए लक्ष्मी मंदिर चलकर लक्ष्मी जी का पूजन करें।'

निर्वाचित राजा उल्लू तोते पंडितों के साथ लक्ष्मी मंदिर की ओर उड़ चले उनके जाने के कुछ क्षण पश्चात् ही वहां कौआ आया। चारों ओर जश्न-सा माहौल देखकर वह चौंका। उसने पूछा 'भाई, यहां किस उत्सव की तैयारी हो रही हैं?

पक्षियों ने उल्लू के राजा बनने की बात बताई। कौआ चीखा 'मुझे सभा में क्यों नहीं बुलाया गया? क्या मैं पक्षी नहीं?'

मोर ने उत्तर दिया 'यह जंगली पक्षियों की सभा हैं। तुम तो अब जाकर अधिकतर कस्बों व शहरों में रहने लगे हो। तुम्हारा हमसे क्या वास्ता?'

कौआ, उल्लू के राजा बनने की बात सुनकर जल-भुन गया था। वह सिर पटकने लगा और कां-कां करने लगा 'अरे, तुम्हारा दिमाग खराब हो गया हैं, जो उल्लू को राजा बनाने लगे? वह चूहे खाकर जीता हैं और यह मत भूलो कि उल्लू केवल रात को बाहर निकलता है। अपनी समस्याएं और फरियाद लेकर किसके पास जाओगे? दिन को तो वह मिलेगा नहीं।'

कौए की बातों का पक्षियों पर असर होने लगा। वे आपस में कानाफूसी करने लगे कि शायद उल्लू को राजा बनाने का निर्णय कर उन्होंने गलती की है। धीरे-धीरे सारे पक्षी वहां से खिसकने लगे। जब उल्लू लक्ष्मी पूजन कर तोतों

के साथ लौटा तो सारा राज्याभिषेक स्थल सूना पड़ा था। उल्लू घुघुआया 'सब कहां गए?'

उल्लू की सेविका खंडरिच पेड़ पर से बोली 'कौआ आकर सबको उल्टी पट्टी पढ़ा गया। सब चले गए। अब कोई राज्याभिषेक नहीं होगा।'

उल्लू चोंच पीसकर रह गया। राजा बनने का सपना चूर-चूर हो गया तब से उल्लू, कौओं का बैरी बन गया और देखते ही उस पर झपटता है।

7

मुकुटधर पांडेय

मुकुटधर पांडेय (1895 – 6 नवम्बर, 1989) हिन्दी कवि थे। वे छायावाद के जनक माने जाते हैं।

परिचय

उनका जन्म छत्तीसगढ़ राज्य के बिलासपुर जिले के एक छोटे से गाँव बालपुर में 30 सितम्बर सन् 1895 ई0 को हुआ। किंशुक–कानन–आवेष्टित चित्रोत्पला के तट – प्रदेश में बसा यह गाँव रायगढ़ – सारंगढ़ मार्ग पर चन्द्रपुर (जमींदारी) के पूर्व में स्थित है। और महानदी के पुल या किसी टीले से घनी अमराइयों से झांकता हुआ दिखाई देता है। सूर्यास्त के समय यहाँ की छटा निराली होती है। वे अपने आठ भाईयों में सबसे छोटे थे। इनकी प्रारंभिक शिक्षा गाँव में ही हुई। इनके पिता पं.चिंतामणी पांडेय संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे और भाइयों में पं0 लोचन प्रसाद पांडेय जैसे हिन्दी के प्रयात साहित्यकार थे। बाल्यकाल में ही पिता की मृत्यु हो जाने पर बालक मुकुटधर पांडेय के मन में गहरा प्रभाव पड़ा किन्तु वे अपनी सृजनशीलता से विमुख नहीं हुए।

उनका निधन 6 नवम्बर, 1989 को हुआ।

साहित्यिक अवदान

सन् 1909 में 14 वर्ष की उम्र में उनकी पहली कविता आगरा से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'स्वदेश बांधव' में प्रकाशित हुई एवं सन् 1919 में

उनका पहला कविता संग्रह 'पूजा के फूल' प्रकाशित हुआ। देश की सभी प्रमुख पत्रिकाओं में लगातार लिखते हुए मुकुटधर पांडेय ने हिन्दी पद्य के साथ-साथ हिन्दी गद्य के विकास में भी अपना अहम योग दिया। पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित अनेक लेखों व कविताओं के साथ ही उनकी पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित कृतियाँ इस प्रकार हैं–'पूजाफूल (1916), शैलबाला (1916), लच्छमा (अनुदित उपन्यास, 1917), परिश्रम (निबंध, 1917), हृदयदान (1918), मामा (1918), छायावाद और अन्य निबंध (1983), स्मृतिपुंज (1983), विश्वबोध (1984), छायावाद और श्रेष्ठ निबंध (1984), मेघदूत (छत्तीसगढ़ी अनुवाद, 1984) आदि प्रमुख हैं।

पुरस्कार

हिन्दी के विकास में योगदान के लिये इन्हें विभिन्न अलंकरण एवं सम्मान प्रदान किये गये। भारत सरकार द्वारा इन्हें सन् 1976 में पद्म श्री' से नवाजा गया। पं. रविशंकर विश्वविद्यालय द्वारा भी इन्हें मानद डीं लिटं की उपाधि प्रदान की गई।

एक बालक पत्रिकाओं को उल्ट-पुलट कर देख रहा है, किस पन्ने में किन चित्रों के साथ भैया की कविता छपी है। उधर ममतामयी मां देवहुती रसोई से टेर लगा रही है।.... इसी वातावरण में लुका-छिपी ... तुकबंदी होने लगती है। पितृशोक से वह और भी प्रबल हो जाती है। खेल ही खेल में ढेर-सी कविताएं रजत और स्वर्ण-पदकों की उद्घोषणा के साथ 'हितकारिणी', 'इन्दु', 'स्वदेश-बान्धव', आर्य महिला', 'सरस्वती', -जैसी प्रसिद्ध पत्रिकाओं में छपने लगती है। देखते ही देखते सन् 1916 में मुरली मुकुटधर पांडेय के नाम से इटावा के ब्रह्म प्रेस से सज-धज के साथ 'पूजाफूल' का प्रकाशन होता है। उसी वर्ष प्रयाग विश्वविद्यालय से किशोर कवि प्रवेशिका में उत्तीर्ण भी हो जाता है। प्रयाग के क्रिश्चियन कॉलेज में प्रवेश के साथ ही बचपन जैसे दूर-बहुत-दूर छूटने लगता है।... कवि अधीर हो कर पुकार उठता है-

बालकाल! तू मुझसे ऐसी
आज विदा क्यों लेता है।
मेरे इस सुखमय जीवन को
दु:ख भय से भर देता है।

[ads&post]

इलाहाबाद में रहते हुए दो-तीन माह मजे में गुजरे, फिर वहां से एक दिन अचानक ही टेलीग्राम और फिर सदा के लिए कॉलेज का रास्ता बंद। बालपुर में पिताश्री द्वारा स्थापित विद्यालय में अध्ययन.... बाकी समय में हिन्दी, अँग्रेजी, बँगला और उड़िया साहित्य का गम्भीर अध्ययन, अनुवाद और स्वतंत्र लेखन। अब उनका ध्यान गाँव के काम करने वाले गरीब किसानों की ओर गया। उन्होंने श्रम की महिमा गामी:-

छोड़ जन-संकुल नगर निवास
किया क्यों विजन ग्राम में गेह
नहीं प्रासादों की कुछ चाह
कुटीरों से क्या इतना नेह

फिर तो मानवीय करुणा का विस्तार होता ही गया और वह करुणा पशु-पक्षियों और प्रकृति में भी प्रतिबिंबित होने लगी..... कुछ-कुछ अँग्रेजी रोमांटिसिज्म की शुरुआत-जैसी। हिन्दी काव्य में एक नई ताजगी पैदा हुई। स्थूल की जगह सूक्ष्म ने ली। द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता फीकी पड़ने लगी। प्रेम और सौंदर्य का एक नया ताना-बाना बुना जाने लगा, जिसमें वैयक्तिक रागानुभूति के साथ ही रहस्यात्मक प्रवृतियां बढ़ने लगीं और पद्यात्मकता की जगह प्रगीतात्मकता प्रमुख होती गई। इसी धारा पर मैथिली शरण गुप्त, बद्रीनाथ भट्ट, और जयशंकर प्रसाद भी अग्रसर हो रहे थे। इस समय तो पांडे जी प्राय: सभी प्रमुख पत्रिकाओं के लिए महत्त्वपूर्ण हो उठे। इतना ही नहीं, 'सरस्वती' की फ्री लिस्ट में उनका नाम दर्ज हो गया। पहले तो उन्होंने विशुद्ध मानवीय प्रेम का गीत गाया:-

हुआ प्रथम जब उसका दर्शन
गया हाथ से निकल तभी मन

फिर यह पार्थिव प्रेम अपार्थिव प्रेम में बदल गया:-

देखेंगे नक्षत्रों में जा उनका दिव्य प्रकाश
किसकी नेत्र ज्योति है अद्‌भुत
किसके मुख का हास

'कुटिल केश-चुंबित मुखमंडल का हास' कवि के मलिन लोचनों में सदा के लिए दिव्य प्रकाश बन गया।

लेकिन यह अलौकिक सत्ता निवृत्ति मूलक नहीं प्रवृत्ति मूलक है। इसीलिए कवि उसे स्पष्ट भी कर देता है –

हुआ प्रकाश तमोमय जग में
मिला मुझे तू तत्क्षण जग में
तेरा बोध हुआ पग पग में
खुला रहस्य महान

साहित्य – संसार में युवा कवि मुकुटधर पांडेय का जीवन आनंद से बीत रहा था– कि एक दिन आधी रात किसी पक्षी के करुण विलाप से वें नींद से जाग उठे, करुणा से उनके हृदय के तार झनझना उठे। उन्होंने कविता लिखी – 'कुररी के प्रतिश, तब क्या उन्हें मालूम था कि छायावादी कविता आप से आप लिख जाती है। अकेली इस अमर रचना से छायावाद की भूमि निर्दिष्ट हो जाती है।

अन्तरिक्ष में करता है तू क्यों अनवरत विलाप?
ऐसी दारुण व्यथा तुझे क्या है किसका परिताप?
किसी गुप्त दुष्कृति की स्मृति क्या उठी हृदय में जाग
जला रही है तुझको अथवा प्रिय वियोग की आग

और तब तक स्वच्छन्दावादी काव्यधारा आवेग में आ चुकी थी। समस्या उठी नामकरण की, पुराने आचार्य उसे मान्यता देना नहीं चाहते थे। नई कविता उनकी समझ में आती नहीं थी। तब इस नूतन पद्धति पर चलने वाली कविता पर चर्चाएँ होने लगीं। पं. मुकुटधर पांडेय ने सर्वप्रथम अपनी तर्कपूर्ण शैली में इस कविता–धारा को 'छायावाद' नाम दिया। स्पष्ट विवेचना के कारण यह नाम सभी को उपयुक्त जान पड़ा। फिर शीघ्र ही 'छायावाद, नाम प्रचार में आ गया। लोगों ने उसे जितना ही दबाने का प्रयत्न किया, उतना ही वह उभरने लगा। 'श्रीशारदा' में प्रकाशित उनके चार निबन्धों की यह लेखमाला हिन्दी साहित्य की अनुपम धरोहर है। युग –प्रर्वतक के साथ ही सब कुछ धुँधलाने लगा और पीड़ा से कवि का मुखर उद्‌गार अवरुद्ध–सा हो गया। एक लम्बे मौन के बाद .....मध्याह्न में बादलों में छिपा मार्तण्ड अपनी मोहक मुस्कान से पश्चिम की ओर एक बार फिर झाँकने लगा।

अखबारों में उ.प्र. 'हिन्दी संस्थान' द्वारा प्रकाशित सम्मानित साहित्यकारों की सूची में वयोवृद्ध साहित्यकार मुकुटधर पांडेय का नाम देखकर हार्दिक प्रसन्नता हुई। अपनी प्रसन्नता न रोक पाने के कारण मैं उनके पास तुरन्त पहुंचता हूँ। बधाई देने पर वे क्षण भर कुछ चकित–से होते हैं, फिर मुस्कुरा कर पूछते हैं– मैं संकोच मिश्रित हर्ष से कहता हूँ, 'तीन अन्य साहित्यकार जगन्नाथ

मिलिन्द, सोहनलाल द्विवेदी, आदि प्रसिद्ध कवियों के सहित हिन्दी संस्थान लखनऊ आपको सम्मानित करने जा रहा है, तो वे कुछ संकोच में पड़ जाते हैं। पांडेय जी जितने सरल और निश्छल थे, उतने ही संकोची। इस सम्मान में उक्त प्रत्येक साहित्यकार को पन्द्रह हजार की राशि भेंट की गई थी।

मुकुटधर पाडेय की अब तक प्रकाशित कृतियाँ इस प्रकार हैं –

1. पूजाफूल, 1916, ब्रह्म प्रेस, इटावा।
2. हृदयदान(कहानी-संग्रह), 1918, गल्पमाला, बनारस।
3. परिश्रम(निबंध-संग्रह), 1917, हरिदास एवं कम्पनी, कलकत्ता।
4. लच्छमा (अनुदित उपन्यास), 1917, हरिदास एण्ड कम्पनी, कलकत्ता।
5. शैलबाला, 1916।
6. मामा, 1924, रिखवदास वाहिनी एण्ड कम्पनी, कलकत्ता।
7. छायावाद एवं अन्य निबंध, 1979, म.प्र. हि. सा. सम्मेलन, भोपाल।
8. स्मृति-पुंज, 1983, तिरुपति प्रकाशन, हापुड़।
9. विश्वबोध (काव्य-संग्रह) 1984, श्रीशारदा साहित्य सदन, रायगढ़।
10. छायावाद एवं अन्य श्रेष्ठ निबंध, 1984, श्रीशारदा साहित्य सदन, रायगढ़।
11. मेघदूत1984 छत्तीसगढ़ लेखक संघ, रायगढ़।

मुकुटधर पांडेय उन यशस्वी साहित्यकारों में हैं, जो दो चार रचनाओं से ही अमर हो जाते हैं। एक बार आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने उन्हें लिखा था 'आप वर्ष में कोई तीन रचनाएँ भेज दिया करें। उनकी सीख, कम लिखिए पर अच्छा लिखने की कोशिश कीजिए। दो चार कविताएं लिखकर ही आदमी अमर हो सकता है और यों बहुत लिखने पर सौ-पचास वर्षों के बाद लोग नाम तक याद नहीं रखते', ये वाक्य उनके लिए गुरुमंत्र सिद्ध हुए। हिंदी में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, सरदार पूर्णासिंह और पण्डित मुकुटधर पांडेय ऐसे ही साहित्यकार हैं, जिन्हें लोग उनकी दो-चार रचनाओं पर ही वर्षों से ससम्मान स्मरण करते आ रहे हैं और करते रहेंगे। काल की बेला ने मनीषी पं. मुकुटधर पांडेय को 6 नवंबर, 1989 को हमसे छीन लिया।

कुररी के प्रति

.....

बता मुझे ऐ विहग विदेशी अपने जी की बात
पिछड़ा था तू कहाँ, आ रहा जो कर इतनी रात
निद्रा में जा पड़े कवि के ग्राम –मनुज स्वच्छंद

अन्य विहग भी निज नीड़ों में सोते हैं सानन्द
इस नीरव घटिका में उड़ता है तू चिन्तित गात
पिछड़ा था तू कहाँ, हुई क्यों तुझको इतनी रात?
देख किसी माया प्रान्तर का चित्रित चारु दुकूल?
क्या तेरा मन मोहजाल में गया कहीं था भूल?
क्या उसकी सौंदर्य-सुरा से उठा हृदय तब ऊब?
या आशा की मरीचिका से छला गया तू खूब?
या होकर दिग्भ्रान्त लिया था तूने पथ प्रतिकूल?
किसी प्रलोभन में पड़ अथवा गया कहीं था भूल?
अन्तरिक्ष में करता है तू क्यों अनवरत विलाप
ऐसी दारुण व्यथा तुझे क्या है किसका परिताप?
किसी गुप्त दुष्कृति की स्मृति क्या उठी हृदय में जाग
जला रही है तुझको अथवा प्रिय वियोग की आग?
शून्य गगन में कौन सुनेगा तेरा विपुल विलाप?
बता कौन-सी व्यथा तुझे है, है किसका परिताप?
यह ज्योत्सना रजनी हर सकती क्या तेरा न विषाद?
या तुझको निज-जन्म भूमि की सता रही है याद?
विमल ब्योम में टँगे मनोहर मणियों के ये दीप
इन्द्रजाल तू उन्हें समझ कर जाता है न समीप
यह कैसा भय-मय विभ्रम है कैसा यह उन्माद?
नहीं ठहरता तू, आई क्या तुझे गेह की याद?
कितनी दूर कहाँ किस दिशि में तेरा नित्य निवास
विहग विदेशी आने का क्यों किया यहाँ आयास
वहाँ कौन नक्षत्र - वृन्द करता आलोक प्रदान?
गाती है तटिनी उस भू की बता कौन-सा गान?
कैसा स्निग्ध समीरण चलता कैसी वहाँ सुवास
किया यहाँ आने का तूने कैसे यह आयास?
,,,,,,,

कुररी के प्रति

.....

विहग विदेशी मिला आज तू बहुत दिनों के बाद
तुझे देखकर फिर अतीत की आई मुझको याद

किंशुक-कानन-आवेष्टित वह महानदी-तट देश
सरस इक्षु के दण्ड, धान की नव मंजरी विशेष
चट्टानों पर जल-धारा की कलकल ध्वनि अविराम,
विजन बालुका-राशि, जहाँ तू करता था विश्राम
चक्रवाक दंपत्ति की पल-पल कैसी विकल पुकार
कारण्डव-रव कहीं-कहीं कलहंस वंश उद्गार
कठिनाई से जिसे भूल पाया था हृदय अधीर
आज उसी की स्मृति उभरी क्यों अन्तस्तल को चीर?
किया न तूने बतलाने का अब तक कभी प्रयास
किस सीमा के पार रुचिर है तेरा चिर-आवास
सुना, स्वर्णमय भूमि वहाँ की मणिमय है आकाश
वहाँ न तम का नाम कहीं है, रहता सदा प्रकाश
भटक रहा तू दूर देश में कैसे यों बेहाल?
क्या अदृष्ट की विडंबना को सकता कोई टाल
अथवा तुझको दिया किसी ने निर्वासन का दण्ड?
बता अवधि उसकी क्या, या वह निरवधि और अखण्ड?
ऐसा क्या अक्षम्य किया तूने अपराध अमाप?
कथ्य रहित यह रुदन, तथ्य का अथवा है अप्रलाप?
या अभिचार हुआ कुछ, तुझ पर या कि किसी का शाप?
प्रकट हुआ यह या तेरे प्राक्तन का पाप-कलाप?
कोई सुने न सुने, सुनता कुछ अपने ही आप,
अंतरिक्ष में करता है तू क्यों अनवरत विलाप?
शरद सरोरुह खिले सरों में, फूले वन में कास
सुनकर तेरा रुदन हास मिस करते वे परिहास।
क्रौंच, कपोत, कीर करते हैं उपवन में अलाप
सुनने को अवकाश किसे है तेरा करुण - विलाप?
जिसे दूर करने का संभव कोई नहीं उपाय,
निःसहाय, निरुपाय उसे तो सहना ही है हाय!
दुःख -भूल, इस दुःख की स्मृति को कर दे तू निर्मूल,
पर जो नहीं भूलने का है, सकता कैसे भूल?
मंडराता तू नभो देश में, अपने पंख पसार,

मन में तेरे मंडराते हैं, रह-रह कौन विचार?
जिसके पीछे दौड़ रहा तू, अनुदिन आत्म-विभोर
जाने वह कैसी छलना है, उसका ओर न छोर
ठिठक पड़ा तू देख ठगा-सा सांध्य क्षितिज का राग
जगा चुका वह कभी किसी के भग्न हृदय में आग
परदेशी पक्षी, चिंता की धारा को दे मोड़
अंतर की पीड़ा को दे अब अन्तर-तर से जोड़।
प्रियतम को पहचान उसे कर अपर्ण तन-मन-प्राण
उसके चरणों में हो तेरे क्रन्दन का अवसान।
सुना, उसे तू अपने. पीड़ित -व्यक्ति हृदय का हाल
भटक रहा तू दूर देश में, क्यों ऐसा बेहाल?
''''''

ये कविताएं अधिकांश द्विवेदी युग की उपज हैं। कविता के क्षेत्र में खड़ी बोली अपने पैर जमा चुकी थी। ब्रज भाषा के पूर्ण कवि, हरिऔध आदि जो दो चार समर्थ कवि थे। नवयुवकों में मैथिलीशरण गुप्त, लोचन प्रसाद पांडेय (मेरे अग्रज), आदि प्रासादिक शैली में राष्ट्रीय और आख्यानक कविताएं लिख रहे थे। हमारे घर के लघु पुस्तक-संग्रह में बंगला और ओड़िया के सामयिक काव्य साहित्य -मधुसूदन दत्त, हेमचन्द्र और राधानाथ की ग्रंथावलियों का प्रवेश हो चुका था। तब पूर्व में रव्युदय नहीं हुआ था, पर शीघ्र ही रवीन्द्र नाथ और उनके समानांतर द्विजेन्द्रनाथ राय भी पहुँच गए थे। इन सबका एक मिला जुला प्रभाव मुझ पर पड़ा था।

तत्कालीन मासिक पत्र-पत्रिकाओं में मेरी छोटी - छोटी कविताएँ छपा करती थीं, पर 'पूजा फूल' के बाद उनका कोई संग्रह नहीं हो पाया था और वे इधर दुष्प्राप्य भी हो रही थी। डॉ0 बलदेव के प्रयत्न से उनका जो संग्रह प्रस्तुत किया जा रहा है, वही इस पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो रहा है। इसके प्रकाशन का सम्पूर्ण श्रेय उन्हीं को है, जिसके लिए मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ।

मुकुटधर पांडेय
रायगढ़, मकर संक्रांति, सं 2040 वि
''''

अपने अच्छे दिनों में चाहे ग्रीष्म हो, चाहे भरी बरसात, सर्द हवाओं के दिन, अंधेरी रात हो या उजेली, उसकी श्री सुषमा में कहीं कोई अन्तर नहीं

पड़ता, खेत धान की नव-मंजरियों से भरे हों या तीसी के नीले उजले फूलों से। मेंड़ों पर निहारिकाओं से विमल प्रकाश फेंकते दूर्वादल हों या सरस इक्षु के दण्ड वाले खेत या वातावरण में भूख को बढ़ाती हुई औंटते रसों से छनकर आती हुई गुड़ की गंध, ये रंगरूप, ये गंध ध्वनियाँ आज भी पांडेय जी के किशोर मन को ललचाते हैं। पांडेय जी की कविताओं में बाग - बागीचों और पलाशवन से घिरा छोटा-सा गाँव बालपुर अपने अतीत की स्मृतियों में खो जाता है। महानदी के सुरम्य तट पर मंजरित आम्र-तरुओं में छिपकर गाती हुई कोयल, अंगारे से दहकते ठंडे पलाशवन, नदी के सुनील मणिमय आकाश में उड़ते कल -हंसों की पांत. ....लहरों पर दूर तक जाती उनकी परछाइयां..... जल पंखियाँ का शोर, चक्रवाक दम्पति की प्रतिफल विकल पुकार, कारण्डवों का कल-कूंजन-चट्टानों पर जलधारा की अविराम कल-कल ध्वनि और दूर-दूर तक विजन बालुकाओं का विस्तार, नौका विहार करते.... फिरते अंधेरे के झुरमुट में जगमगाते जुगनुओं के बीच से गुजरते कवि का मन जब घर लौटता तो आंगन में उतर आई चांदनी में पुनः खो जाता.... न भूख न प्यास ... तब कवि की सुकुमार कल्पना एक अज्ञात रहस्य की ओर इंगित करती.... कच्चे धागे से वह कौन-सा पट बुनती यह भावानुभूति की चीज है।

समूचा परिवार साहित्य साधना में आकंठ डूबा हुआ। पं. लोचन प्रसाद पांडेय की रचनाओं का सुलेख करते, आगन्तुक कवियों और संन्यासियों का गीत-संगीत सुनते, पार्वती लायब्रेरी में अध्ययन करते या रहंस बेड़ा में अभिनय करते, कवि मुकुटधर पांडेय का बचपन लुकाछिपी में कविता रचते बीत जाता है। पितृ शोक से रचना कर्म गतिशील हो उठता है। चौदह वर्ष की उम्र में पहली कविता 'स्वदेश बान्धव' में प्रकाशित होती है। खेल ही खेल में ढेर-सी कविताएँ रजत और स्वर्ण पदकों की उद्घोषणा के साथ हितकारिणी, इन्दु, स्वदेश बांधव, आर्य महिला, विशाल भारत तथा सरस्वती जैसी श्रेष्ठ पत्रिकाओं के मुखपृष्ठ पर छपने लगती हैं। देखते ही देखते सन् 1916 में सन् 1909 से 15 तक की कविताएं मुरली-मुकुटधर पांडेय के नाम से इटावा के ब्रह्म-प्रेस से सज-धज के साथ 'पूजा फूल' शीर्षक से प्रकाशित होती है। उसी वर्ष किशोर कवि प्रवेशिका में प्रयाग विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण भी हो जाता है। बालपुर और रायगढ़ कुछ दिनों के लिए छूट-सा जाता है-- कवि अधीर हो पुकार उठता है--

'बालकाल तू मुझसे ऐसी आज बिदा क्यों लेता है,
मेरे इस सुखमय जीवन को दुःखमय से भर देता है।'

इलाहाबाद में रहते हुए दो तीन माह मजे में गुजरे, फिर वहाँ से एक दिन अचानक ही टेलीग्राम.... और तीसरे दिन अस्वस्थता की हालत में रायगढ़। यहाँ महामारी फैली हुई है। पूज्याग्रज पं0 लोचन प्रसाद पांडेय ने जीप की व्यवस्था कर दी है। शाम होते-होते घर लौट आते हैं। फिर सदा के लिए कॉलेज का रास्ता बन्द। वहीं बालपुर में पिता श्री द्वारा स्थापित विद्यालय में अध्ययनध् बाकी समय हिन्दी, अंग्रेजी, बंगला और उड़ीया साहित्य के गंभीर अध्ययन, अनुवाद और स्वतंत्र लेखन में।अब उनका ध्यान गाँव के काम करने वाले गरीब किसानों की ओर गया। उन्होंने श्रम की महिमा गायी।

'छोड़ जन-संकुल नगर निवास किया-क्यों विजन ग्राम में गेह,
नहीं प्रसादों की कुछ चाह - कुटीरों से क्यों इतना नेह।

फिर तो मानवीय करुणा का विस्तार होता ही गया और वह करुणा पशु-पक्षियों और प्रकृति में भी प्रतिबिंबित होने लगी..... कुछ-कुछ रोमाटिज्म की शुरुआत जैसी। हिन्दी काव्य में एक नई ताजगी पैदा हुई। स्थूल की जगह सूक्ष्म ने ले ली, द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकता फीकी पड़ने लगी। प्रेम और सौंदर्य का नया ताना-बाना बुना जाने लगा, जिसमें वैयक्तिक रागानुभूति के साथ ही रहस्यात्मक प्रवृत्तियां बढ़ने लगी और पद्यात्मकता की जगह प्रगीतात्मकता प्रमुख होती गयी। इस धारा पर मैथिली शरण गुप्त, बद्रीनाथ भट्ट और जय शंकर प्रसाद भी अग्रसित हो रहे थे। इस समय पांडेय जी प्राय: सभी प्रमुख पत्रिकाओं के लिए महत्त्वपूर्ण हो उठे। हितकारिणी के सम्पादक श्री नर्मदा मिश्र ने 5101913 को एक पत्र लिखा था, जिसका एक अंश यहाँ उद्धृत है। - 'आपकी एक कविता इस अंक में छप रही है। कृप्या दूसरी कोई अच्छी-सी कविता भेजियेगा। कृतज्ञ होउंगा। मेरी दृढ़ इच्छा रहती है कि प्रत्येक अंक में आपका एक न एक लेख अवश्य रहे, पर यह आपकी कृपा और इच्छा के अधीन है।' इतना ही नहीं 'सरस्वती' की फ्री लिस्ट में उनका नाम दर्ज हो गया। 'किसान, जैसी कविता के लिए सम्पादक पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने लिखा था-''ऐसी कोई चीज बन जाय तो रजिस्टर्ड डाक से सीधे 'विशाल भारत' को भेजने की कृपा करेंगे।'

'पूजा फूल' के प्रकाशन के बाद पहले-पहल तो उन्होंने विशुद्ध मानवीय प्रेम का गीत गाया–

हुआ प्रथम जब उसका दर्शन
गया हाथ से निकल तभी मन।
फिर यह पार्थिव प्रेम अपार्थिव प्रेम में बदल गया––

'देखेंगे नक्षत्रों में जा उनका दिव्य प्रकाश,
किसकी नेत्र ज्योति है अद्‌भुत किसके मुख का हास।'

'कुटिल-केश चुंबित मुख मंडल का हास' कवि के मलिन लोचनों में सदा के लिए दिव्य प्रकाश बन गया। लेकिन यह अलौकिक सत्ता निवृत्ति मूलक नहीं, प्रवृत्ति मूलक है। इसीलिए कवि उसे स्पष्ट भी कर देता है--

हुआ प्रकाश तमोमय जग में
मिला मुझे तू तत्क्षण जग में
तेरा बोध हुआ पग पग में
खुला रहस्य महान।

कविता लेखन के साथ ही गद्य लेखन भी समान गति से चल रहा था। इस बीच एक घटना घटी, उनके किसी मित्र ने ऐसी भंग खिलाई कि उसकी खुमारी आज भी दिलों-दिमाग को बेचैन कर बैठती है। जन्म कुंडली में किसी उत्कली ज्योतिषी ने चित्त विभ्रम और हिन्दी -भाषी ज्योतिषी ने 'चित्तक्षत' लिखा था। यह घटना 1918 की है, जो सन् 1923 में चरम सीमा में पहुंच गयी। मानसिक अशान्ति से साहित्य - साधना एकदम से छिन्न-भिन्न हो गई। शोध-प्रबन्धों ने गलत - सलत बातें लिखीं। कतिपय सज्जनों ने उन आलोचकों को मुह-तोड़ जवाब भी दिया, लेकिन कवि ने उन्हें क्षमा कर दिया। 'बात यह थी कि सन् 1923 के लगभग मुझे एक मानसिक रोग हुआ था। मेरी साहित्यिक साधना छिन्न-भिन्न हो गयी, तब किसी ने मुझे स्वर्गीय मान लिया हो तो वह एक प्रकार से ठीक ही था। वह मुझ पर दैवी प्रकोप था, कोई देव गुरु - शाप या कोई अभिचार था। यह मेरे जीवन का अभी तक एक रहस्य ही बना हुआ है।'

पांडेय जी ने मानसिक अशान्ति के इन्हीं क्षणों में 'कविता 'और 'छायावाद' जैसे युगांतरकारी लेख और 'कुररी के प्रति' जैसे अमर रचनाएँ लिखीं।

पंडित मुकुटधर पांडेय संक्रमण काल के सबसे अधिक सामर्थ्यवान कवि हैं। वे द्विवेदी युग और छायावाद युग के बीच की ऐसी महत्त्वपूर्ण कड़ी हैं जिनकी काव्य-यात्रा को समझे बिना खड़ी बोली के दूसरे-तीसरे दशक तक के विकास को सही रूप से नहीं समझा जा सकता, उन्होंने द्विवेदी-युग के शुष्क उद्यान में नूतन सुर भरा तथा बसन्त की अगवानी कर युग प्रवर्तन का ऐतिहासिक कार्य किया।

वे जीवन की समग्रता के कवि हैं।उनके काव्य में प्रसन्न और उदास दोनों भावों के छाया चित्र हैं। उन्हें प्रकृति के सौंदर्य में अज्ञात सत्ता का आभास मिलता है।

उसके प्रति कौतूहल उनमें हर कहीं विद्यमान है। यदि एक ओर उनके काव्य में अन्तर-सौंदर्य की तीव्र एवं सूक्ष्मतम अनुभूति, समर्पण और एकान्त साधना की प्रगीतात्मक अभिव्यक्ति है तो दूसरी ओर द्विवेदी युगीन प्रासादिकता और लोकहित कि आदर्श।

सन् 1915 के आस-पास स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा चौड़ा पाट बनाने में लगी थी, द्विवेदी युगीन तट -कछार उसमें ढहने लगे थे। इस धारा के सबसे सशक्त हस्ताक्षर थे जयशंकर प्रसाद और मुकुटधर पांडेय। इसके समानांतर सन् 1920 तक द्विवेदी युग भी संघर्षरत रहा कहा जा सकता है, उसका प्रभाव सन् 1935 तक रहा। मुकुटधर पांडेय में स्वच्छन्दतावादी और द्विवेदी -युगीन काव्य की गंगा-जमुनी धारा यदि एक साथ प्रवाहित दिखे तो आश्चर्य नहीं। लेकिन तय है उस युग के काव्य का प्रवर्तन उन्हीं से होता है। उन्हीं की प्रगीत रचनाओं से होकर छायावादी कविताएं यात्रा करती हैं, और उन्होंने ही सर्वप्रथम उस युग की कविताओं को द्विवेदी युग से अलग रेखांकित किया।

(श्रीशारदा 1920) जैसी सशक्त लेखमाला द्वारा ही उस युग की कविता की पहचान होती है। इस कविता धारा को सांकेतिक शैली के अर्थ विशेष में पांडेय जी ने 'छायावाद' नाम दिया था।

वैसे छायावाद का प्रथम प्रयोग श्रीशारदा की लेखमाला के प्रकाशन के पूर्व मार्च 1920 की हितकारिणी में प्रकाशित उनकी कविता 'चरण प्रसाद' में हुआ है--

भाषा क्या वह छायावाद
है न कहीं उसका अनुवाद

मेरे विचार से यह छायावाद की एक सुन्दर व्याख्या है। और इसका प्रयोग हिन्दी में आप्त वाणी जैसा ही हुआ है। स्वतः स्फूर्त और परम पूर्ण।

कवि मुकुटधर पांडेय अपनी सहजात प्रवृत्तियों के साथ ही युग बोध से भी जुड़े, और यही वजह है कि वे आज भी प्रासंगिक हैं। उनके रचना संसार में द्विवेदी युग और छायावाद के काव्य संस्कार मौजूद हैं। इसी अर्थ में मैंने उन्हें संक्रमण काल का कवि कहा है। वे सन् 1909 से 1923 तक अत्यधिक सक्रिय रहे। हिन्दी प्रदेश के वे शायद अकेले निर्विवाद और.लोकप्रिय कवि थे, जो उस

समय की प्राय: सभी साहित्यिक पत्रिकाओं के मुख पृष्ठ में ससम्मान स्थान पाते रहे।

पं. मुकुटधर पांडेय की कविताएं, सन् 1909 से 1983 तक फैली हुई हैं। उन्होंने बारह वर्ष की उम्र में लिखना शुरू किया था। इकहत्तर वर्षों की प्रदीर्घ साधना को कुछ पृष्ठों में मुद्रित नहीं किया जा सकता। पूजा-फूल में कुल 74 कविताएं हैं। तीन पं. मुरलीधर पांडेय की तथा इकहत्तर मुकुटधर पांडेय जी की। यह महज संयोग है कि इतनी ही रचनाएँ इस संकलन में अनजाने आ गयी हैं। पुस्तक का शीर्षक उनकी प्रसिद्ध कविता 'विश्वबो, धके नाम पर रखा गया है, कोई आग्रह नहीं आखिर एक शीर्षक ही तो देना था।

पं. मुकुटधर पांडेय जी की करीब तीन सौ कविताएं मेरे पास संकलित हैं। पिछले एक दशक से मैं साहित्य मनीषी पं. मुकुटधर पांडेय 'शीर्षक एक स्वतंत्र' पुस्तक लिख रहा था, इसी दौरान ये कविताएँ पुरानी पत्र-पत्रिकाओं, कुछ पुस्तकों और कुछ पांडेय जी से प्राप्त हो गयी, उन्हीं में से यह चयन है। कविता के नीचे विवरण दे दिया गया है, अत: अलग से उल्लेख करना औपजारिकता ही है। क्रमांक चार से अट्ठारह 'पूजा फूल' से ली गयी है। जीवन साफल्य 'काल की कुटिलता, और शोकांजलिक कविता-कुसुम माला में भी संकलित है। द्विवेदी युग में वे अनुवादक के रूप में लोकप्रिय थे। अंग्रेजी और बंगला की अनुदित रचनाओं ने खड़ी बोली कविता धारा को प्रभावित किया हो तो आश्चर्य नहीं, यहां बंगला की चार अनुदित रचनाएँ भी शामिल हैं। अन्तिम ग्यारह कविताएं सन् 60 के बाद की है। कविताएं एक क्रम में है ताकि कवि. के विकास क्रम को देखा-परखा जा सके। और अन्त में, इस संकलन के लिए पांडेय जी ने जिस औदार्य से अनुमति दी, इस आभार को व्यक्त करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। हिन्दी के नये पुराने पाठकों तक पांडेय जी की अन्य रचनाएं भी मैं पहुँचा सकूँ यह मेरी एकान्त कामना है।

डॉ. बलदेव
रायगढ़-दिनांक191183

कविता

मुकुटधर पांडेय

कविता सुललित पारिजात का हास है,
कविता नश्वर जीवन का उल्लास है।

कविता रमणी के उर का प्रतिरूप है,
कविता शैशव का सुविचार अनूप है।
कविता भावोन्मतों का सुप्रलाप है,
कविता कान्त –जनों का मृदु आलाप है।
कविता गत गौरव का स्मरण– विधान है,
कविता चिर–विरही का सकरुण गान है।
कविता अन्तर उर का बचन–प्रवाह है,
कविता कारा बद्ध हृदय को आह है।
कविता मग्न मनोरथ का उद्‌गार है,
कविता सुन्दर एक अन्य संसार है।
कविता वर वीरों का स्वर करवाल है,
कविता आत्मोद्धरण हेतु दृढ़ ढाल है।
कविता कोई लोकोत्तर आल्हाद है,
कविता सरस्वती का परम प्रसाद है।
कविता मधुमय –सुधा सलित की है घटा,
कविता कवि के एक स्वप्न की है छटा।

चरण–प्रसाद

कण्टक– पथ में से पहुँचाया चारु प्रदेश
धन्यवाद मैं दूँ कैसे तुझको प्राणेश!
यह मेरा आत्मिक अवसाद?
हुआ मुझे तब चरण–प्रसाद।
छोड़ा था तूने मुझ पर यह दुर्द्धर–शूल,
किन्तु हो गया छूकर मुझको मृदु–फूल
यह प्रभाव किसका अविवाद?
आती ठीक नहीं है याद।
जी होता है दे डालूँ तुझको सर्वस्व,
न्यौछावर कर दूँ तुझ पर सम्पूर्ण निजस्व।
उत्सुकता या यह आह्वाद?
अथवा प्रियता पूर्ण प्रमाद ?
लो निज अन्तर से मम आन्तर –भाषा जान,
लिख सकती लिपि भी क्या उसके भेद महान।

भाषा क्या वह छायावाद,
है न कहीं उसका अनुवाद।

हिन्दी साहित्य को जानने समझने वालों के लिए 'छायावाद' एक ऐसा विषय रहा है जिसकी परिभाषा एवं अर्थ पर आरंभ से आज तक अनेक साहित्य मनीषियों एवं साहित्यानुरागियों नें अपनी लेखनी चलाई है एवं लगातार लिखते हुए इसे पुष्ट करने के साथ ही इसे द्विवेदी युग के बाद से पुष्पित व पल्लवित किया है। छायावादी विद्वानों का मानना है कि, सन. 1918 में प्रकाशित जयशंकर जी की कविता संग्रह 'झरना' प्रथम छायावादी संग्रह था। इसके प्रकाशन के साथ ही हिन्दी साहित्य जगत में द्विवेदीयुगीन भूमि पर हिन्दी पद्य की शैली में बदलाव दृष्टिगोचर होने लगे थे। देखते ही देखते इस नई शैली की अविरल धारा साहित्य प्रेमियों के हृदय में स्थान पा गई। इस नई शैली के आधार स्तंभ जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुमित्रनंदन पन्त और महादेवी वर्मा थे। कहा जाता है कि इस नई शैली को साहित्य जगत में परिभाषित करने एवं नामकरण करने का श्रेय पं.मुकुटधर पांडेय को जाता है। सन् 1918 से लोकप्रिय हो चुकी इस शैली के संबंध में सन् 1920 में जबलपुर से प्रकाशित पत्रिका 'श्री शारदा' में जब पं. मुकुटधर पांडेय जी की लेख माला का प्रकाशन आरंभ हुआ तब इस पर राष्ट्र व्यापी विमर्श हुआ और 'छायावाद' नें अपना सम्मामन स्थापित किया।

'छायावाद' पर प्रकाशित लेखमाला व 'छायावाद' के संबंध में स्वयं पं. मुकुटधर पांडेय कहते हैं–'सन् 1920 में 'छायावाद' का नामकरण हुआ और जबलपुर की 'श्री शारदा' में हिन्दी में छायावाद शीर्षक से मेरी लेख-माला निकली। इसके पहले सन् 1918 में 'प्रसाद जी' का 'झरना' निकल चुका था, जो छायावादी कविताओं का प्रथम संग्रह था। ..... आचार्य शुक्ल नें त्वउंदजपबपेउ के पर्याय के रूप में जिसे स्वच्छ्छंदतावाद, कहा था, वह 'छायावाद' का अग्रगामी था त्वउंदजपबपेउ जिसे हरफोर्ड नें मपहीजमदपदह वि मदेपइपसपजल भावोत्कर्ष कहा था, वही 'छायावाद' के रूप में परिणित हुआ था उसकी मुख्य विशेषतायें हैं, मानवतावाद सौंदर्यवाद, रहस्यवाद, रोमांटिक निराशावाद। 'छायावाद' की कुछ कविताओं में एक ऐसी मर्मभेदी करुणा ध्वनि पाई जाती है, जो करुणा होने पर भी अत्यंत मधुर है। वह एक करुण व्यथा की कथा है, जो मनुष्य की साधारण समझ के बाहर की बात है। 'छायावाद' के सौंदर्य बोध और कल्पना में पूर्ववर्ती कविताओं से बड़ा अंतर था। छायावाद द्वारा द्विवेदी युगीन काव्यधारा का एक नई दिशा की ओर व्यपवर्तन घटित हुआ था।

छायावादी काव्य एवं 'छायावाद' शब्द के प्रयोग पर तद्समय साहित्य जगत में हो रही चर्चाओं में किंचित विरोध के स्वर भी मुखरित होने लगे थे जिसका कारण मूलत: निराला एवं उनके अनुयायियों के द्वारा छंदों का अंग-भंग किया जाना था किन्तु यह सृजन के पूर्व का हो हल्ला था, आगे उसी लेख में पं. मुकुटधर पांडेय जी कहते हैं–'द्विवेदी जी नें सुकवि किंकर के छद्मनाम से 'सरस्वती' में छायावाद की कठोर आलोचना की। उनका व्यंग्यपूर्ण कटाक्ष था, जिस कविता पर किसी अन्य कविता की छाया पड़ती हो, उसे छायावाद कहा जाता है, तब मेरा माथा ठनका। लोग छाया शब्द का लाभ उठाकर छायावाद की छीछालेदार कर रहे थे। छायावादी कवियों की एक बाढ़-सी आ गई। मैनें 'माधुरी' में एक लेख लिखकर नई शैली के लिये 'छायावाद' शब्द का प्रयोग नहीं करने का आग्रह किया। पर उस पर किसी नें ध्यान नहीं दिया, जो शब्द चल पडा, सो चल पड़ा।'

छायावाद हिन्दी साहित्य में स्थापित हो गया और इसे 'छायावाद' सिद्ध करने में पं.मुकुटधर पांडेय के 'श्री शारदा' में प्रकाशित लेखमाला की अहम भूमि का रही। उनके इस लेखमाला के संबंध में प्रो. ईश्वरी शरण पांडेय जी कहते हैं ' श्री पांडेय जी की इस लेखमाला के प्रत्येंक निबंध छायावाद पर लिखे गए बीसियों तथाकथित मौलिक शोधात्मक प्रबंध ग्रंथों से ऐतिहासिक तथा साहित्यिक दोनों दृष्टियों से कहीं अधिक स्थायी महत्त्व के हैं। यह लेखमाला हिन्दी साहित्य की 'दीप्त-धरोहर' हैं।' पं. मुकुटधर पांडेय की सरस्वती में प्रकाशित कविता 'कुकरी के प्रति' को प्रथम छायावादी कविता माना गया एवं समस्त हिन्दी साहित्य जगत नें इसे स्वीकार भी किया। 'कुकरी के प्रति' पं.मुकुटधर पांडेय की ऐसी कविता थी जिसमें छायावाद के सभी तत्त्व समाहित थे, इस कविता के संबंध में डॉ.शिवमंगल सिंह 'सुमन' नें रायगढ़ में कहा था–'कुकरी में तो भारत वर्ष की सारी संवेदना की परंपरा निहित है ....'

30 सितम्बर सन् 1895 को छत्तीसगढ़ के एक छोटे से गांव बालपुर में जन्में पं. मुकुटधर पांडेय अपने आठ भाईयों में सबसे छोटे थे। इनकी प्रारंभिक शिक्षा गांव में ही हुई। इनके पिता पं.चिंतामणी पांडेय संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे और भाईयों में पं. लोचन प्रसाद पांडेय जैसे हिन्दी के प्रयात साहित्यकार थे। इनके संबंध में एक लेख में प्रो.अश्विनी केशरवानी जी कहते हैं–'पुरुषोत्तम प्रसाद, पद्मलोचन, चंद्रशेखर, लोचनप्रसाद, विद्याधर, वंशीधर, मुरलीधर और मुकुटधर तथा बहनों में चंदन कुमारी, यज्ञ कुमारी, सूर्य कुमारी और आनंद कुमारी थी। सुसंस्कृत, धार्मिक

और परम्परावादी घर में वे सबसे छोटे थे, अत: माता-पिता के अलावा सभी भाई-बहनों का स्नेहानुराग उन्हें स्वाभाविक रूप से मिला। पिता चिंतामणी और पितामह सालिगराम पांडेय जहां साहित्यिक अभिरुचि वाले थे वहीं माता देवहुति देवी धर्म और ममता की प्रतिमूर्ति थी। धार्मिक अनुष्ठान उनके जीवन का एक अंग था। अपने अंग्रेजों के स्नेह सानिध्य में 12 वर्ष की अल्पायु में ही उन्होंने लिखना शुरू किया। तब कौन जानता था कि यही मुकुट छायावाद का ताज बनेगा...?'

बाल्यकाल में ही पिता की मृत्यु हो जाने पर बालक पं.मुकुटधर पांडेय के मन में गहरा प्रभाव पड़ा किन्तु वे अपनी सृजनशीलता से विमुख नहीं हुए। सन् 1909 में 14 वर्ष की उम्र में उनकी पहली कविता आगरा से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'स्वदेश बांधव में प्रकाशित हुई एवं सन् 1919 में उनकी पहली कविता संग्रह 'पूजा फूल' का प्रकाशन हुआ। इतनी कम उम्र में अपनी प्रतिभा और काव्य कौशल को इस तरह से प्रस्तुत करने वाले पं. मुकुटधर पांडेय अपने अध्ययन के संबंध में स्वयं कहते हैं–'सन् 1915 में प्रयाग विश्व विद्यालय की प्रवेशिका परीक्षा उत्तीर्ण होकर मैं एक महाविद्यालय में भर्ती हुआ पर मेरी पढ़ाई आगे नहीं बढ़ पाई। मैंने हिन्दी, अरबी, बंगला, उड़िया साहित्य का अध्ययन किसी विद्यालय या महाविद्यालय में नहीं किया। घर पर ही मैंनें उनका अनुशीलन किया और उसमें थोड़ी बहुत गति प्राप्त की।' महानदी की प्राकृतिक सुषमा सम्पन्न तट और सहज ग्राम्य जीवन का रस लेते हुए कवि नें अपनी लेखनी को भी इन्हीं रंगों में संजोया -

कितना सुन्दर और मनोहर, महानदी यह तेरा रूप।
कलकलमय निर्मल जलधारा, लहरों की है छटा अनूप।
तुझे देखकर शैशव की है, स्मृंतियां उर में उठती जाग।
लेता है किशोर काल का, अँगडाई अल्हड अनुराग।

अबाध गति से देश की सभी प्रमुख पत्रिकाओं में लगातार लिखते हुए पं. मुकुटधर पांडेय नें हिन्दी पद्य के साथ-साथ हिन्दी गद्य पर भी अपना अहम् योगदान दिया। हिन्दी जगत में योगदान के लिये इन्हें विभिन्न अलंकरण एवं सम्मान प्रदान किये गये। भारत सरकार द्वारा भी इन्हें 'पद्म श्री' का अंलंकरण प्रदान किया गया। ऐसे ऋषि तुल्य मनीषी का सम्मान करना व अलंकरण प्रदान करने में सम्मान व अलंकरण प्रदान करने वाली संस्थायें स्वयं गौरवान्वित हुई। पं.रविशंकर विश्वविद्यालय द्वारा इन्हें मानद् डी.लिट् की उपाधि भी प्रदान की गई।

साहित्य प्रेमियों, साहित्यकारों और समीक्षकों नें इनकी रचनाओं की उत्कृष्टता के संबंध में बहुत कुछ लिखा, जो समय समय-पर पत्र- पत्रिकाओं

में एवं पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित होती रहीं एवं सम्मान के साथ उनकी लेखनी को अंतरतम तक स्वीकार किया जाता रहा। साहित्य के शास्त्रीय परम्राओं से अनभिज्ञों के द्वारा भी पं. मुकुटधर पांडेय की रचनाओं को पढने और शब्दों की गरहाई में गोता लगाने का काम आज तलक किया जा रहा है। पं.मुकुटधर पांडेय की रचना शैली पर डॉ. सुरेश गौतम जी कहते है - इनके काव्य में मानव-प्रेम, प्रकृति-सौंदर्य, करुणाजनित सहानुभूति, दु:खवाद, मानवीकरण, वैयक्तिकता, लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता, आध्यात्मिकता, संयोग-वियोग, अव्यक्त सत्ता के प्रति जिज्ञासा और गीतात्मकता की प्रधानता रही है। .... कमोबेश इनके सभी गीत संक्षिप्त एवं छायावादी शैली का पूर्वाभास है। छायावाद के कल्पना-वैभव की अट्टालिका का पहला द्वार मुकुटधर पांडेय है। इनकी गीत-पदचाप छायावादी गोली का सौंदर्य है जिनकी प्रतीतियों नें कालान्तर में ऐतिहासिक यात्रा करते हुए छायावाद की संज्ञा प्राप्त की।'

अपनी रचनाओं के संबंध में स्वयं पं. मुकुटधर पांडेय जी कहते हैं - 'श्मेरी रचनाओं में चाहे लोग जो भी खोज लें परन्तु वे विशुद्ध रूप से मेरी आंतरिक सहज अभिव्याक्ति मात्र है। मैंने कुछ अधिक लिखा नहीं केवल कुछ स्पुट कविताएँ लिखी हैं। उनमें न तो कल्पना की ऊँची उड़ान है न विचारों की उलझन, न भावों की दुरूहता। उनमें उर्दू की चीजों की तरह चुलबुलाहट या बांकपन भी नहीं। वह सहज-सरल उद्‌गार मात्र हैं। ..... पर हम लोगों का महत्व अब केवल ऐतिहासिक दृष्टि से हैं। आजकल हिन्दी में बड़े बड़े कवि हैं, उनके सम्मुख हम नगण्य हैं।'

90 वर्ष की उम्र तक हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में छायावादी परिर्वतन को स्थापित करा देने वाले तेजोमय चिर युवा का निधन 6 नवम्बर, 1995 में रायपुर में लम्बी बीमारी के बाद हो गया। उन्होंनें स्वयं ही अपनी एक कविता में महानदी से अनुरोध करते हुए कहा था कि, 'हे महानदी तू अपनी ममतामयी गोद में मुझको अंतिम विश्राम देना, तब मैं मृत्यु–पर्व का भरपूर सुख लूटूंगा -

चित्रोत्पले बता तू मुझको वह दिन सचमुच कितना दूर,
प्राण प्रतीक्षारत लूटेंगें, मृत्यु-पर्व का सुख भरपूर।

'कुकरी के प्रति' के सर्जक और 'छायावाद' के प्रर्वतक संत, ऋषि पं. मुकुटधर पांडेय हिन्दी साहित्य जगत में दैदीप्यमान नक्षत्र के रूप में सदैव प्रकाशमान रहेंगें एवं नवसृजनोन्मेषी मानसिकता को राह प्रशस्थ करते रहेंगें।

8

लोचन प्रसाद पांडेय

लोचन प्रसाद पांडेय (4 जनवरी, 1887 ई., बिलासपुर, मध्य प्रदेश -- 18 नवम्बर, 1959 ई.) हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार थे। इन्होंने हिन्दी एवं उड़िया दोनों भाषाओं में काव्य रचनाएँ भी की हैं। सन् 1905 से ही इनकी कविताएँ 'सरस्वती' तथा अन्य मासिक पत्रिकाओं में निकलने लगी थीं। लोचन प्रसाद पांडेय की कुछ रचनाएँ कथा प्रबन्ध के रूप में हैं तथा कुछ फुटकर। वे 'भारतेंदु साहित्य समिति' के भी ये सदस्य थे। मध्य प्रदेश के साहित्यकारों में इनकी विशेष प्रतिष्ठा थी। आज भी इनका नाम बड़े आदर से लिया जाता है।

जन्म तथा परिवार

लोचन प्रसाद पांडेय का जन्म 4 जनवरी, सन् 1887 ई. में मध्य प्रदेश के बिलासपुर जिले में बालपुर नामक ग्राम में हुआ था। बिलासपुर अब छत्तीसगढ़ राज्य का हिस्सा है। लोचन प्रसाद पांडेय के पिता पंडित चिन्तामणि पांडेय विद्याव्यसनी थे। उन्होंने अपने गाँव में बालकों की शिक्षा के लिए एक पाठशाला खुलवाई थी। लोचन प्रसाद जी अपने पिता के चतुर्थ पुत्र थे। वे आठ भाई थे– पुरुषोत्तम प्रसाद, पद्मलोचन, चन्द्रशेखर, लोचन प्रसाद, विद्याधर, वंशीधर, मुरलीधर और मुकुटधर तथा चंदन कुमारी, यज्ञ कुमारी, सूर्य कुमारी और आनंद कुमारी, ये चार बहनें थीं।

शिक्षा

लोचन प्रसाद पांडेय की प्रारंभिक शिक्षा बालपुर की निजी पाठशाला में हुई। सन् 1902 में मिडिल स्कूल संबलपुर से पास किया और 1905 में कलकत्ता से इंटर की परीक्षा पास करके बनारस गये, जहाँ अनेक साहित्य मनीषियों से उनका संपर्क हुआ। उन्होंने अपने प्रयत्न से ही उड़िया, बंगला और संस्कृत का भी ज्ञान प्राप्त किया था। लोचन प्रसाद पांडेय ने अपने जीवन काल में अनेक जगहों का भ्रमण किया। साहित्यिक गोष्ठियों, सम्मेलनों, कांग्रेस अधिवेशन, इतिहास-पुरातत्त्व खोजी अभियान में वे सदा तत्पर रहे। उनकी खोज के कारण अनेक गढ़, शिलालेख, ताम्रपत्र, गुफा प्रकाश में आ सके। सन् 1923 में उन्होंने 'छत्तीसगढ़ गौरव प्रचारक मंडली' की स्थापना की, जो बाद में 'महाकौशल इतिहास परिषद्' कहलाया। उनका साहित्य, इतिहास और पुरातत्त्व में समान अधिकार था।

स्वभाव

लोचन प्रसाद पांडेय स्वभाव से सरल एवं निश्छल थे। इनका व्यवहार आत्मीयतापूर्ण हुआ करता था। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से पाठकों को चरित्रोत्थान की प्रेरणा दी। उस समय उपदेशक का कार्य भी साहित्य के सहारे करना आज की तरह नहीं था, इसलिए इनकी रचनाओं ने पाठकों के संयम के प्रति रुचि उत्पन्न की। ये 'भारतेन्दु साहित्य समिति' के एक सम्मानित सदस्य थे। मध्य प्रदेश में इनके प्रति बड़ा आदर, सम्मान एवं प्रतिष्ठा का भाव है।

साहित्यिक कृतित्त्व

लोचन प्रसाद पांडेय का साहित्यिक-कृतित्त्व, चरित्रोत्थान, नीति-पोषण, उपदेश-दान, वास्तविक-चित्रण एवं लोक कल्याण के लिए ही परिसृष्ट हुआ है। इनके काव्य का वस्तुगत रूपाधार अभिधा मूलक, निश्चित एवं असांकेतिक है। ये कथा एवं घटना का आधार लेकर वृत्तात्मक कविताएँ लिखा करते थे। सन् 1905 ई. से ये 'सरस्वती' में कविताएँ लिखने लगे थे। भारतेन्दु का जागरण-तृयं बज चुका था। द्विवेदी युग के शक्ति-संचय काल में लोचन प्रसाद पांडेय का अभ्यागमन हुआ। इसी समय सहृदय सामयिकता, ओज, संतुलित पद-योजना एवं तत्सम पदावली से पूर्ण इनकी कविता ने सांकेतिकता एवं ध्वन्यात्मकता के अभाव में भी हृदय-सम्पृक्त इतिवृत्त के कारण लोगों का ध्यान अपनी ओर

आकृष्ट किया। स्फुट एवं प्रबन्ध, दोनों ही प्रकार की कविताओं द्वारा लोचन प्रसाद जी ने सुधार-भाव को प्रतिष्ठापित किया। 'मृगी दु:खमोचन' नामक कविता में वृक्ष-पशु आदि के प्रति भी इनकी सहृदयता सुन्दर रूप में व्यक्त हुई है। ये मध्य प्रदेश के अग्रगण्य साहित्य नेता भी रहे।

रचनाएँ

लोचन प्रसाद पांडेय ने 40 से अधिक ग्रन्थों की रचना की। इनमें 3 उड़िया में, 4 अंग्रेजी में और शेष हिन्दी में हैं। 'दो मित्र', 'प्रवासी', 'माधव मंजरी', 'कौशल रत्नमाला आदि उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं।

लोचन प्रसाद पांडेय की प्रमुख रचनाओं का विवरण निम्नलिखित है-

1. 'दो मित्र' उद्देश्य प्रधान, सामाजिक उपन्यास, मैत्री आदर्श, समाज-सुधार, स्त्री-चरित्र से प्रेरित एवं पाश्चात्य सभ्यता की प्रतिक्रिया पर लिखित लोचन प्रसाद पांडेय की 1906 में प्रकाशित प्रथम कृति है।
2. 1907 में मध्य प्रदेश से ही प्रकाशित 'प्रवासी' नामक काव्य-संग्रह में छायावादी, रहस्यमयी संकलनों की भाँति कल्पनागत, मूर्तिमत्ता एवं ईषत् लाक्षणिकता का प्रयास दिखाई पड़ता है।
3. 1910 में 'इण्डियन प्रेस', प्रयाग से 'कविता कुसुम माला', बालोपयोगी काव्य-संकलन एवं 1914 में 'नीति कविता' धर्म विषयक संग्रह निकले।
4. लोचन प्रसाद पांडेय का 1914 में 'साहित्यसेवा' नामक प्रहसन प्रकाशित हुआ, जिसमें व्यंग्य-विनोद के लिए हास्योत्पादन की अतिनाटकीय घटना-चरित्र संयोजन शैली का प्रयोग हुआ है।
5. सन 1914 में समाज सुधार मूलक 'प्रेम प्रशंसा' व 'गृहस्थ-दशा दर्पण' नाट्य-कृति प्रकाशित हुई थी।
6. उनका 'मेवाड़ गाथा' ऐतिहासिक खण्ड-काव्य सन् 1914 में ही प्रकाशित हुआ था।
7. सन् 1915 में 'पद्य पुष्पांजलि' नामक दो काव्य-संग्रह भी प्रकाशित हुए थे।

सम्मान

लोचन प्रसाद पांडेय को 'काव्य विनोद' एवं 'साहित्य-वाचस्पति' की उपाधियाँ प्राप्त हुई थीं।

9

बालमुकुंद गुप्त

बालमुकुंद गुप्त (14 नवंबर, 1865 - 18 सितंबर, 1907) का जन्म गुड़ियानी गाँव, जिला रिवाड़ी, हरियाणा में हुआ। उन्होंने हिन्दी के निबंधकार और संपादक के रूप हिन्दी जगत की सेवा की।

जीवनी

उर्दू और फारसी की प्रारंभिक शिक्षा के बाद 1886 ई. में पंजाब विश्वविद्यालय से मिडिल परीक्षा प्राइवेट परीक्षार्थी के रूप में उत्तीर्ण की। विद्यार्थी जीवन से ही उर्दू पत्रों में लेख लिखने लगे। झझर (जिला रोहतक) के 'रिफाहे आम' अखबार और मथुरा के 'मथुरा समाचार' उर्दू मासिकों में पं. दीनदयाल शर्मा के सहयोगी रहने के बाद 1886 ई. में चुनार के उर्दू अखबार 'अखबारे चुनार' के दो वर्ष संपादक रहे। 1888-1889 ई. में लाहौर के उर्दू पत्र 'कोहेनूर' का संपादन किया। उर्दू के नामी लेखकों में आपकी गणना होने लगी। 1889 ई. में महामना मालवीय जी के अनुरोध पर कालाकाँकर (अवध) के हिंदी दैनिक 'हिंदोस्थान' के सहकारी संपादक हुए जहाँ तीन वर्ष रहे। यहाँ पं. प्रतापनारायण मिश्र के संपर्क से हिंदी के पुराने साहित्य का अध्ययन किया और उन्हें अपना काव्य गुरु स्वीकार किया। सरकार के विरुद्ध लिखने पर वहाँ से हटा दिए गए। अपने घर गुड़ियानी में रहकर मुरादाबाद के 'भारत प्रताप' उर्दू मासिक का संपादन किया और कुछ हिंदी तथा बाँग्ला पुस्तकों का उर्दू में

अनुवाद किया। अंग्रेजी का इसी बीच अध्ययन करते रहे। 1893 ई. में 'हिंदी बंगवासी' के सहायक संपादक होकर कलकत्ता गए और छह वर्ष तक काम करके नीति संबंधी मतभेद के कारण इस्तीफा दे दिया। 1899 ई. में 'भारतमित्र' कलकत्ता के संपादक हुए और मृत्यु हुई।

'भारतमित्र' में आपके प्रौढ़ संपादकीय जीवन का निखार हुआ। भाषा, साहित्य और राजनीति के सजग प्रहरी रहे। देशभक्ति की भावना इनमें सर्वोपरि थी। भाषा के प्रश्न पर 'सरस्वती संपादक', पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी से इनकी नोंक-झोक, लार्ड कर्जन की शासन नीति की व्यंग्यपूर्ण और चुटीली आलोचनायुक्त 'शिवशंभु के चिट्ठे' और उर्दूवालों के हिंदी विरोध के प्रत्युत्तर में उर्दू बीबी के नाम चिट्ठी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। लेखन शैली सरल, व्यंग्यपूर्ण, मुहावरेदार और हृदयग्राही होती थी। पैनी राजनीतिक सूझ और पत्रकार की निर्भीकता तथा तेजस्विता इनमें कूट-कूटकर भरी थी।

पत्रकार होने के साथ ही वे एक सफल अनुवादक और कवि भी थे। अनुदित ग्रंथों में बाँग्ला उपन्यास मडेल भगिनी और हर्षकृत नाटिका रत्नावली उल्लेखनीय हैं। स्फुट कविता के रूप में आपकी कविताओं का संग्रह प्रकाशित हुआ था। इनके अतिरिक्त आपके निबंधों और लेखों के संग्रह हैं।

रचनाएँ

उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं-
हरिदास,
खिलौना,
खेलत माशा,
स्फुट कविता,
शिवशंभु का चिट्ठा,
सन्निपात चिकित्सा,
बालमुकुंद गुप्त निबंधावली।

शिवशंभु के चिट्ठे

माई लार्ड! लड़कपन में इस बूढ़े भंगड .को बुलबुल का बड़ा चाव था। गांवमें कितने ही शौकीन बुलबुल बाज थे। वह बुलबुलें पकड़ते थे, पालते थे और लड़ाते थे, बालक शिवशम्भु शर्मा बुलबुलें लड़ाने का चाव नहीं रखता था।

केवल एक बुलबुल को हाथ पर बिठाकर ही प्रसन्न होना चाहता था। पर ब्राह्मण कुमार को बुलबुल कैसे मिले? पिता को यह भय कि बालक को बुलबुल दी तो वह मार देगा, हत्या होगी। अथवा उसके हाथ से बिल्ली छीन लेगी तो पाप होगा। बहुत अनुरोध से यदि पिता ने किसी मित्र की बुलबुल किसी दिन ला भी दी तो वह एक घण्टे से अधिक नहीं रहने पाती थी। वह भी पिता की निगरानी में।

सराय के भटियारे बुलबुलें पकड़ा करते थे। गांव के लड़के उनसे दो-दो तीन-तीन पैसे में खरीद लाते थे। पर बालक शिवशम्भु तो ऐसा नहीं कर सकता था। पिता की आज्ञा बिना वह बुलबुल कैसे लावे और कहां रखे? उधर मनमें अपार इच्छा थी कि बुलबुल जरूर हाथ पर हो। इसी से जंगल में उड़ती बुलबुल को देखकर जी फड़क उठता था। बुलबुल की बोली सुनकर आनन्द से हृदय नृत्य करने लगता था। कैसी-कैसी कल्पनाएं हृदय में उठती थीं। उन सब बातों का अनुभव दूसरों को नहीं हो सकता। दूसरों को क्या होगा? आज यह वही शिवशम्भु है, स्वयं इसीको उस बाल काल के अनिर्वचनीय चाव और आनन्द का अनुभव नहीं हो सकता।

बुलबुल पकड़ने की नाना प्रकार की कल्पनाएं मन ही मन में करता हुआ बालक शिवशम्भु सो गया। उसने देखा कि संसार बुलबुलमय है। सारे गांव में बुलबुलें उड़ रही है। अपने घर के सामने खेलने का जो मैदान है, उसमें सैकड़ों बुलबुल उड़ती फिरती है। फिर वह सब ऊँची नहीं उड़तीं। बहुत नीची नीची उड़ती है। उनके बैठने के अड्डे भी नीचे-नीचे हैं। वह कभी उड़ कर इधर जाती हैं और कभी उधर, कभी यहां बैठती है और कभी वहां, कभी स्वयं उड़कर बालक शिवशम्भु के हाथ की उंगलियों पर आ बैठती है। शिवशम्भु आनन्द में मस्त होकर इधर-उधर दौड़ रहा है। उसके दो-तीन साथी भी उसी प्रकार बुलबुलें पकड़ते और छोड़ते इधर-उधर कूदते फिरते हैं।

आज शिवशम्भु की मनोवांछा पूर्ण हुई। आज उसे बुलबुलों की कमी नहीं है। आज उसके खेलने का मैदान बुलबुलिस्तान बन रहा है। आज शिवशम्भु बुलबुलों का राजा ही नहीं, महाराजा है। आनन्द का सिलसिला यहीं नहीं टूट गया। शिवशम्भु ने देखा कि सामने एक सुन्दर बाग है। वहीं से सब बुलबुलें उड़कर आती हैं। बालक कूदता हुआ दौड़ कर उसमें पहुंचा। देखा, सोने के पेड़ पत्ते और सोने ही के नाना रंग के फूल हैं। उन पर सोने की बुलबुलें बैठी गाती हैं और उड़ती फिरती हैं। वहीं एक सोने का महल है। उस पर सैंकड़ों सुनहरी

कलश हैं। उनपर भी बुलबुलें बैठी हैं। बालक दो-तीन साथियों सहित महल पर चढ़ गया। उस समय वह सोने का बागीचा सोने के महल और बुलबुलों सहित एक बार उड़ा। सब कुछ आनन्द से उड़ता था, बालक शिवशम्भु भी दूसरे बालकों सहित उड़ रहा था। पर यह आमोद बहुत देर तक सुखदायी न हुआ। बुलबुलों का ख्याल अब बालक के मस्तिष्क से हटने लगा। उसने सोचा - हैं! मैं कहां उड़ा जाता हूं? माता पिता कहां? मेरा घर कहां? इस विचार के आते ही सुखस्वप्न भंग हुआ। बालक कुलबुला कर उठ बैठा। देखा और कुछ नहीं, अपनाही घर और अपनी ही चारपाई है। मनोराज्य समाप्त हो गया।

आपने माई लार्ड! जब से भारतवर्ष में पधारे हैं, बुलबुलों का स्वप्न ही देखा है या सचमुच कोई करने के योग्य काम भी किया है? खाली अपना ख्याल ही पूरा किया है या यहां की प्रजा के लिये भी कुछ कर्त्तव्य पालन किया? एक बार यह बातें बड़ी धीरता से मनमें विचारिये। आपकी भारत में स्थिति की अवधि के पांच वर्ष पूरे हो गये अब यदि आप कुछ दिन रहेंगे तो सूद में, मूलधन समाप्त हो चुका। हिसाब कीजिये, नुमायशी कामों के सिवा काम की बात आप कौन सी कर चले हैं और भड़कबाजी के सिवा ड्यूटी और कर्त्तव्य की ओर आपका इस देश में आकर कब ध्यान रहा है? इस बार के बजट की वक्तृता ही आपके कर्त्तव्य काल की अन्तिम वक्तृता थी। जरा उसे पढ़ तो जाइये फिर उसमें आपकी पांच साल की किस अच्छी करतूत का वर्णन है। आप बारम्बार अपने दो अति तुमतराक से भरे कामों का वर्णन करते हैं। एक विक्टोरिया मेंमोरियल हॉल और दूसरा दिल्ली-दरबार। पर जरा विचारिये तो यह दोनों काम 'शो' हुए या 'ड्यूटी? विक्टोरिया मेंमोरियल हॉल चन्द पेट भरे अमीरों के एक दो बार देख आने की चीज होगा उससे दरिद्रों का कुछ दु:ख घट जावेगा या भारतीय प्रजा की कुछ दशा उन्नत हो जावेगी, ऐसा तो आप भी न समझते होंगे।

अब दरबार की बात सुनिये कि क्या था? आपके ख्याल से वह बहुत बड़ी चीज था। पर भारतवासियों की दृष्टि में वह बुलबुलों के स्वप्न से बढ़कर कुछ न था। जहां-जहां से वह जुलूस के हाथी आये, वहीं-वहीं सब लौट गये। जिस हाथी पर आप सुनहरी झूलें और सोने का हौदा लगवाकर छत्र धारण-पूर्वक सवार हुए थे, वह अपने कीमती असबाब सहित जिसका था, उसके पास चला गया। आप भी जानते थे कि वह आपका नहीं और दर्शक भी जानते थे कि आपका नहीं। दरबार में जिस सुनहरी सिंहासन पर विराजमान होकर आपने भारत के सब राजा महाराजाओं की सलामी ली थी, वह भी वहीं तक था और आप स्वयं

भली-भांति जानते हैं कि वह आपका न था। वह भी जहां से आया था वहीं चला गया। यह सब चीजें खाली नुमायशी थीं। भारतवर्ष में वह पहले ही से मौजूद थीं। क्या इन सबसे आपका कुछ गुण प्रकट हुआ? लोग विक्रम को याद करते हैं या उसके सिंहासन को, अकबर को या उसके तख्त को? शाहजहां की इज्जत उसके गुणों से थी या तख्तेताऊस से? आप जैसे बुद्धिमान पुरुष के लिये यह सब बातें विचारने की हैं।

चीज वह बनना चाहिये जिसका कुछ देर कयाम हो। माता पिता की याद आते ही बालक शिवशम्भु का सुख स्वप्न भंग हो गया। दरबार समाप्त होते ही वह दरबार-भवन, वह एम्फीथियेटर तोड़कर रख देने की वस्तु हो गया। उधर बनाना, इधर उखाड़ना पड़ा। नुमायशी चीजों का यही परिणाम है। उनका तितलियों का-सा जीवन होता है। माई माई लार्ड! आपने कछाड़ के चाय वाले साहबों की दावत खाकर कहा था कि यह लोग यहां नित्य हैं और हम लोग कुछ दिन के लिये। आपके वह 'कुछ दिन' बीत गये। अवधि पूरी हो गई। अब यदि कुछ दिन और मिलें तो वह किसी पुराने पुण्य के बल से समझिये। उन्हीं की आशा पर शिवशम्भु शर्मा यह चिट्ठा आपके नाम भेज रहा है, जिससे इन माँगे दिनों में तो एक बार आपको अपने कर्त्तव्य ख्याल हो।

जिस पद पर आप आरूढ़ हुए वह आपका मौरूसी नहीं - नदी-नाव संयोग की भांति है। आगे भी कुछ आशा नहीं कि इस बार छोड़ने के बाद आपका इससे कुछ सम्बन्ध रहे। किन्तु जितने दिन आपके हाथ में शक्ति है, उतने दिन कुछ करने की शक्ति भी है। जो कुछ आपने दिल्ली आदि में कर दिखाया उसमें आपका कुछ भी न था, पर वह सब कर दिखाने की शक्ति आप में थी। उसी प्रकार जाने से पहले, इस देश के लिये कोई असली काम कर जाने की शक्ति आपमें है। इस देश की प्रजा के हृदय में कोई स्मृति-मन्दिर बना जाने की शक्ति आपमें है। पर यह सब तब हो सकता है, कि वैसी स्मृति की कुछ कदर आपके हृदय में भी हो। स्मरण रहे धातु की मूर्तियों के स्मृतिचिह्न से एक दिन किले का मैदान भर जायगा। महारानी का स्मृति मन्दिर मैदान की हवा रोकता था या न रोकता था, पर दूसरों की मूर्तियां इतनी हो जावेंगी कि पचास-पचास हाथ पर हवा को टकराकर चलना पड़ेगा। जिस देश में लार्ड लैंसडौन की मूर्ति बन सकती है, उसमें और किस किसकी मूर्ति नहीं बन सकती? माई लार्ड! क्या आप भी चाहते हैं कि उसके आस-पास आपकी एक वैसी ही मूर्ति खड़ी हो?

यह मूर्तियां किस प्रकारके स्मृति चिह्न है? इस दरिद्र देश के बहुत-से धन की एक ढेरी है, जो किसी काम नहीं आ सकती। एक बार जाकर देखने से ही विदित होता है कि वह कुछ विशेष पक्षियों के कुछ देर विश्राम लेने के अड्डे से बढ़कर कुछ नहीं है। माई माई लार्ड! आपकी मूर्ति की वहां क्या शोभा होगी? आइये मूर्तियां दिखावें। वह देखिये एक मूर्ति है, जो किले के मैदान में नहीं है, पर भारतवासियों के हृदय में बनी हुई है। पहचानिये, इस वीर पुरुष ने मैदान की मूर्ति से इस देश के करोड़ों गरीबों के हृदय में मूर्ति बनवाना अच्छा समझा। यह लार्ड रिपनकी मूर्ति है। और देखिये एक स्मृतिमन्दिर, यह आपके पचास लाखके संगम मर वाले से अधिक मजबूत और सैंकड़ो गुना कीमती है। यह स्वर्गीया विक्टोरिया महारानीका सन् 1858 ई. का घोषणापत्र है। आपकी यादगार भी यहीं बन सकती है, यदि इन दो यादगारों की आपके जीमें कुछ इज्जत हो।

मतलब समाप्त हो गया। जो लिखना था, वह लिखा गया। अब खुलासा बात यह है कि एक बार 'शो' और ड्यूटी का मुकाबला कीजिये। 'शो' को 'शो' ही समझिये। 'शो' ड्यूटी नहीं है! माई लार्ड! आपके दिल्ली दरबार की याद कुछ दिन बाद उतनी ही रह जावेगी जितनी शिवशम्भु शर्मा के सिर में बालकपन के उस सुख-स्वप्न की है।

श्रीमान् का स्वागत्

जो अटल है, वह टल नहीं सकता। जो होनहार है, वह होकर रहती है। इसी से फिर दो वर्ष के लिये भारत के वायसराय और गवर्नर जनरल होकर लार्ड कर्जन आते हैं। बहुत से विनों को हटाते और बाधाओं को भगाते फिर एक बार भारतभूमि में आपका पदार्पण होता है। इस शुभयात्रा के लिये वह गत नवम्बर, को सम्राट् एडवर्ड से भी विदा ले चुके हैं। दर्शन में अब अधिक विलम्ब नहीं हैं।

इस समय भारतवासी यह सोच रहे हैं कि आप क्यों आते हैं और आप यह जानते भी हैं कि आप क्यों आते हैं। यदि भारतवासियों का बश चलता तो आपको न आने देते और आपका वश चलता तो और भी कई सप्ताह पहले आ विराजते। पर दोनों ओरकी बाग किसी और ही के हाथ में हैं। निरे बेबश भारतवासियों का कुछ बश नहीं है और बहुत बातों पर बश रखने वाले लार्ड कर्जन को भी बहुत बातों में बेबश होना पड़ता है। इसी से भारतवासियों को लार्ड कर्जन का आना

देखना पड़ता है और उक्त श्रीमान को अपने चलने में विलम्ब देखना पड़ा। कवि कहता है –

'जो कुछ खुदा दिखाये, सो लाचार देखना।'

अभी भारतवासियों को बहुत कुछ देखना है और लार्ड कर्जन को भी बहुत कुछ। श्रीमान को नये शासनकाल के यह दो वर्ष नि:सन्देह देखने की वस्तु होंगे। अभी से भारतवासियों की दृष्टियां सिमटकर उस ओर जा पड़ी हैं। यह जबरदस्त द्रष्टा लोग अब बहुत काल से केवल निर्लिप्त निराकार तटस्थ द्रष्टा की अवस्था में अतृप्त लोचन से देख रहे हैं और न जाने कब तक देखे जावेंगे। अथक ऐसे हैं कि कितने ही तमाशे देख गये, पर दृष्टि नहीं हटाते हैं। उन्होंने पृथ्वीराज, जयचन्द की तबाही देखी, मुसलमानों की बादशाही देखी। अकबर, बीरबल, खानखाना और तानसेन देखे, शाहजहानी तख्तताऊस और शाही जुलूस देखे। फिर वहीं तख्त नादिर को उठाकर ले जाते देखा। शिवाजी और औरंगजेब देखे, क्लाइव हेस्टिंग्स से वीर अंग्रेज देखे। देखते-देखते बड़े शौक से लार्ड कर्जन का हाथियों का जुलूस और दिल्ली-दरबार देखा। अब गोरे पहलवान मिस्टर सेण्डो का छातीपर कितने ही मन बोझ उठाना देखने को टूट पड़ते हैं। कोई दिखाने वाला चाहिये भारतवासी देखने को सदा प्रस्तुत हैं। इस गुण में वह मोंछ मरोड़ कर कह सकते हैं कि संसार में कोई उनका सानी नहीं। लार्ड कर्जन भी अपनी शासित प्रजा का यह गुण जान गये थे, इसीसे श्रीमान् ने लीलामय रूप धारण करके कितनी ही लीलाएं दिखाई।

इसी से लोग बहुत कुछ सोच विचार कर रहे हैं कि इन दो वर्षों में भारतप्रभु लार्ड कर्जन और क्या-क्या करेंगे। पिछले पांच साल से अधिक समय में श्रीमान् ने जो कुछ किया, उसमें भारतवासी इतना समझ ने लगे हैं कि श्रीमान् की रुचि कैसी है और कितनी बातों को पसन्द करते हैं। यदि वह चाहें तो फिर हाथियो ंका एक बड़ा भारी जुलूस निकलवा सकते हैं। पर उसकी वैसी कुछ जरूरत नहीं जान पड़ती। क्योंकि जो जुलूस वह दिल्ली में निकलवा चुके हैं, उसमें सबसे ऊंचे हाथी पर बैठ चुके हैं, उससे ऊँचा हाथी यदि सारी पृथ्वी में नहीं तो भारतवर्ष में तो और नहीं है। इसीसे फिर किसी हाथी पर बैठने का श्रीमान् को और क्या चाव हो सकता है? उससे ऊंचा हाथी और नहीं है। एरावत का केवल नाम है, देखा किसी ने नहीं है। मेमथ की हड्डियां किसी-किसी अजायबखाने में उसी भांति आश्चर्य की दृष्टि से देखी जाती हैं, जैसे श्रीमान् के स्वदेश के अजायबखाने में कोई छोटा-मोटा हाथी। बहुत लोग

कह सकते हैं कि हाथी की छोटाई, बड़ाई पर बात नहीं, जुलूस निकले तो फिर भी निकल सकता है। दिल्ली नहीं तो कहीं और सही। क्योंकि दिल्ली में आतशबाजी खूब चल चुकी थी, कलकत्ते में फिर चलाई गई। दिल्ली में हाथियों की सवारी हो चुकने पर भी कलकत्ते में रोशनी और घोड़ा गाड़ी का तार जमा था। कुछ लोग कहते हैं कि जिस काम को लार्ड कर्जन पकड़ते हैं, पूरा करके छोड़ते हैं। दिल्ली दरबार में कुछ बातों की कसर रह गयी थी। उदयपुर के महाराणा न तो हाथियों के जुलूस में साथ चल सके न दरबार में हाजिर होकर सलामी देनेका मौका उनको मिला। इसी प्रकार बड़ोदानरेश हाथियों के जुलूस में शामिल न थे। वह दरबार में भी आये तो बड़ी सीधी सादी पोशाक में। इतनी सीधी-सादी में जितनी से आज कलकत्ते में फिरते हैं। वह ऐसा तुमतराक और ठाठ-बाठ का समय था कि स्वयं श्रीमान् वायसराय को पतलून तक कारचोबी की पहनना और राजा महाराजों को काठकी तथा ड्यूक ऑफ कनाट को चांदी की कुरसी पर बिठा कर स्वयं सोने के सिंहासन पर बैठना पड़ा था। उस मौके पर बड़ौदा नरेश का इतनी सफाई और सादगी से निकल जाना एक नई आन था। इसके सिवा उन्होंने झुक के सलाम नहीं किया था, बड़ी सादगी से हाथ मिलाकर चल दिये थे। यह कई एक कसरें ऐसी हैं, जिनके मिटाने को फिर दरबार हो सकता है। फिर हाथियों का जुलूस निकल सकता है।

इन लोगों के विचार में कलाम नहीं। पर समय कम है, काम बहुत होंगे। इसके सिवा कई राजा-महाराजा पहले दरबार ही में खर्च से इतने दब चुके हैं कि श्रीमान् लार्ड कर्जन के बाद यदि दो वयासराय और आवें और पांच-पांच की जगह सात-सात साल तक शासन करें, तब तक भी उनका सिर उठाना कठिन है। इससे दरबार या हाथियों के जुलूस की फिर आशा रखना व्यर्थ है। पर सुना है कि अब के विद्या का उद्धार श्रीमान् जरूर करेंगे। उपकार का बदला देना महत् पुरुषों का काम है। विद्या ने आपको धनी किया है, इससे आप विद्या को धनी किया चाहते हैं। इसीसे कंगालो से छीनकर आप धनियों को विद्या देना चाहते हैं। इससे विद्या का वह कष्ट मिट जावेगा जो उसे कंगाल को धनी बनाने में होता है। नींव पड़ चुकी है, नमूना कायम होने में देर नहीं। अब तक गरीब पढ़ते थे, इससे धनियों की निन्दा होती थी कि वह पढ़ते नहीं। अब गरीब न पढ़ सकेंगे, इससे धनी पढ़े न पढ़े उनकी निन्दा न होगी। इस तरह लार्ड कर्जन की कृपा उन्हें बेपढ़े भी शिक्षित कर देगी।

और कई काम हैं, कई कमीशनों के काम का फैसिला करना है, कितनी ही मिशनों की कारवाई का नतीजा देखना है। काबुल है, काश्मीर है, काबुल में रेल चल सकती है, काश्मीर में अंग्रेजी बस्ती बस सकती है। चाय के प्रचार की भांति मोटरगाड़ी के प्रचार की इस देश में बहुत जरूरत है। बंग देश का पार्टीशन भी एक बहुत जरूरी काम है। सबसे जरूरी काम विक्टोरिया मंमोरियल हॉल है। सन् 1858 ई. की घोषणा अब भारतवासियों को अधिक स्मरण रखने की जरूरत न पड़ेगी। श्रीमान् स्मृति मन्दिर बनवाकर स्वर्गीया महारानी विक्टोरिया का ऐसा स्मारक बनवा देंगे, जिसको देखते ही लोग जान जावेंगे कि महारानी वह थीं, जिनका यह स्मारक है।

बहुत बातें हैं। सबको भारतवासी अपने छोटे दिमागों में नहीं ला सकते। कौन जानता है कि श्रीमान् लार्ड कर्जन के दिमाग में कैसे-कैसे आली ख्याल भरे हुए हैं। आपने स्वयं फरमाया था कि बहुत बातों में हिन्दुस्तानी अंग्रेजों का मुकाबिला नहीं कर सकते। फिर लार्ड कर्जन तो इंग्लैंडके रत्न हैं। उनके दिमाग की बराबरी कर गुस्ताखी करने की यहां के लोगों को यह बूढ़ा भंगड़ कभी सलाह नहीं दे सकता। श्रीमान् कैसे आली दिमाग शासक हैं, यह बात उनके उन लगातार कई व्याख्यानों से टपकी पड़ती हैं, जो श्रीमान् विलायत में दिये थे और जिनमें विलायतवासियों को यह समझाने की चेष्टा की थी कि हिन्दुस्तान क्या वस्तु है? आपने साफ दिखा दिया था कि विलायतवासी यह नहीं समझ सकते कि हिन्दुतान क्या है। हिन्दुस्तानको श्रीमान् स्वयं ही समझे हैं। विलायत वाले समझते तो क्या समझते? विलायत में उतना बड़ा हाथी कहां जिस पर वह चंवर छत्र लगाकर चढ़े थे? फिर कैसे समझा सकते कि वह किस उच्च श्रेणी के शासक हैं? यदि कोई ऐसा उपाय निकल सकता, जिससे वह एक बार भारत को विलायत तक खींच ले जा सकते तो विलायत वालों को समझा सकते कि भारत क्या है और श्रीमान् का शासन क्या? आश्चर्य नहीं, भविष्य में ऐसा कुछ उपाय निकल आवे। क्योंकि विज्ञान अभी बहुत कुछ करेगा।

भारतवासी जरा भय न करें, उन्हें लार्ड कर्जन के शासन में कुछ करना न पड़ेगा। आनन्द ही आनन्द है। चैन से भंग पियो और मौज उड़ाओ। नजीर खूब कह गया है –

कुंडी के नकारे पे खुतकेका लगा डंका।
नित भंग पीके प्यारे दिन रात बजा डंका।।
पर एक प्याला इस बूढ़े ब्राह्मणको देना भूल न जाना।

वयासराय का कर्त्तव्य

माई माई लार्ड! आपने इस देश में फिर पदार्पण किया, इससे यह भूमि कृतार्थ हुई। विद्वान बुद्धिमान और विचारशील पुरुषों के चरण जिस भूमि पर पड़ते हैं, वह तीर्थ बन जाती है। आप में उक्त तीन गुणों के सिवा चौथा गुण राजशक्ति का है, अत: आपके श्रीचरण-स्पर्श से भारतभूमि तीर्थ से भी कुछ बढ़कर बन गई। आप गत मंगलवार को फिर से भारत के राजसिंहासन पर सम्राट् के प्रतिनिधि बनकर विराजमान हुए। भगवान आपका मंगल करे और इस पतित देश के मंगल की इच्छा आपके हृदय में उत्पन्न करे।

बम्बई में पांव रखते ही आपने अपने मन की कुछ बात कह डाली हैं। यद्यपि बम्बई की म्यूनिसिपलिटी ने वह बातें सुनने की इच्छा अपने अभिनन्दन पत्र में प्रकाशित नहीं की थी, तथापि आपने बे-पूछेही कह डालीं। ठीक उसी प्रकार बिना बुलाये यह दीन भंगड़ ब्राह्मण शिवशम्भु शर्मा तीसरी बार अपना चिट्ठा लेकर आपकी सेवामें उपस्थित है। इसे भी प्रजा का प्रतिनिधि होने का दावा है। इसीसे यह राजप्रतिनिधि के सम्मुख प्रजा का कच्चा चिट्ठा सुनाने आया है। आप सुनिये न सुनिये, यह सुनाक रही जावेगा।

अवश्य ही इस देश की प्रजा ने इस दीन ब्राह्मण को अपनी सभा में बुलाकर कभी अपने प्रतिनिधि होने का टीका नहीं किया और न कोई पट्टा लिख दिया है। आप जैसे बाजाब्ता राज-प्रतिनिधि हैं वैसा बाजाब्ता शिवशम्भु प्रजा का प्रतिनिधि नहीं है आपको सम्राट् ने बुलाकर अपना वयासराय फिर से बनाया। विलायती गजट में खबर निकली। वही खबर तार द्वारा भारत में पहुंची। मार्ग में जगह जगह स्वागत हुआ। बम्बई में स्वागत हुआ। कलकत्ते में कई बार गजट हुआ। रेल से उतरते और राजसिंहासन पर बैठते समय दो बार सलामी की तोपें सर हुई। कितने ही राजा, नवाब, बेगम आपके दर्शनार्थ बम्बई पहुंचे। बाजे बजते रहे, फौजें सलामी देती रहीं। ऐसी एक भी सनद प्रजा-प्रतिनिधि होने की शिवशम्भु के पास नहीं है। तथापि वह इस देश की प्रजा का यहां के चिथड़ा-पोश कंगालों का प्रतिनिधि होने का दावा रखता है। क्योंकि उसने इस भूमि में जन्म लिया है। उसका शरीर भारत की मट्टी से बना है और उसी मट्टी में अपने शरीर की मट्टी को एक दिन मिला देने का इरादा रखता है। बचपन में इसी देश की धूल में लोटकर बड़ा हुआ, इसी भूमि के अन्न-जल से उसकी प्राणरक्षा होती है। इसी भूमि से कुछ आनन्द हासिल करने को उसे भंग की चन्द पत्तियां मिल जाती है। गांव में उसका कोई झोंपड़ा नहीं है। जंगल में खेत नहीं है। एक पत्ती पर भी

उसका अधिकार नहीं है। पर इस भूमि को छोड़कर उसका संसार में कहीं ठिकाना भी नहीं है। इस भूमि पर उसका जरा स्वत्व न होने पर भी इसे वह अपनी समझता है।

शिवशम्भु को कोई नहीं जानता। जो जानते हैं, वह संसार में एकदम अनजान हैं। उन्हें कोई जानकर भी जानना नहीं चाहता। जानने की चीज शिवशम्भु के पास कुछ नहीं है। उसके कोई उपाधि नहीं, राजदरबार में उसकी पूछ नहीं। हाकिमों से हाथ मिलाने की उसकी हैसियत नहीं, उनकी हां में हां मिलाने की उसे ताब नहीं। वह एक कपर्दक-शून्य घमण्डी ब्राह्मण है। हे राजप्रतिनिधि। क्या उसकी दो चार बातें सुनियेगा?

आपने बम्बई में कहा है कि भारतभूमि को मैं किस्सा-कहानी की भूमि नहीं, कर्त्तव्य भूमि समझता हूं। उसी कर्त्तव्य के पालन के लिये आपको ऐसे कठिन समय में भी दूसरी बार भारत में आना पड़ा। माई माई लार्ड! इस कर्त्तव्य भूमि को हम लोग कर्मभूमि कहते हैं। आप कर्त्तव्य-पालन करने आये हैं और हम कर्मो का भोग भोगने। आपके कर्त्तव्य-पालन की अवधि है, हमारे कर्मभोग की अवधि नहीं। आप कर्त्तव्य-पालन कर के कुछ दिन पीछे चले जावेंगे। हमें कर्मके भोग भोगते-भोगते यहीं समाप्त होना होगा और न जाने फिर भी कबतक वह भोग समाप्त होगा। जब थोड़े दिन के लिए आपका इस भूमि से स्नेह हैं तो हम लोगों का कितना भारी स्नेह होना चाहिए, यह अनुमान कीजिये। क्योंकि हमारा इस भूमिसे जीने-मरने का साथ है।

माई लार्ड! यद्यपि आपको इस बात का बड़ा अभिमान है कि अंग्रेजों में आपकी भांति भारतवर्ष के विषय में शासननीति समझने वाला और शासन करने वाला नहीं है। यह बात विलायत में भी आपने कई बार हेर-फेर लगाकर कही और इस बार बम्बई में उतरते ही फिर कही। आप इस देश में रहकर 72 महीने तक जिन बातों की नींव डालते रहे, अब उन्हें 24 मास या उससे कम में पूरा कर जाना चाहते है। सरहदों पर फौलादी दीवार बना देना चाहते हैं, जिससे इस देश की भूमि को कोई बाहरी शत्रु उठाकर अपने घर में न ले जावे। अथवा जो शान्ति आपके कथनानुसार धीरे-धीरे यहां संचित हुई है, उसे इतना पक्का कर देना चाहते हैं कि आपके बाद जो वयासराय आपके राजसिंहासन पर बैठे उसे शौकीनी और खेल-तमाशे के सिवा दिन में और नाच, बाल या निद्रा के सिवा रात को कुछ करना न पड़ेगा। पर सच जानिये कि आपने इस देश को कुछ नहीं समझा, खाली समझने की शेखी में रहे और आशा नहीं कि इन अगले कई

महीनों में भी कुछ समझें। किन्तु इस देशने आपको खूब समझ लिया और अधिक समझने की जरूरत नहीं रही। यद्यपि आप कहते हैं, कि यह कहानी का देश नहीं कर्त्तव्यका देश है, तथापि यहां की प्रजाने समझ लिया है कि आपका कर्त्तव्यही कहानी है। एक बड़ा सुन्दर मेल हुआ था, अर्थात् आप बड़े घमण्डी शासक हैं और यहां की प्रजा के लोग भी बड़े भारी घमण्डी। पर कठिनाई इसी बात की है कि दोनों का घमण्ड दो तरह का है। आपको जिन बातों का घमण्ड है, उन पर यहां के लोग हँस पड़ते हैं। यहा के लोगों को जो घमण्ड है, उसे आप समझते नहीं और शायद समझेंगे भी नहीं।

जिन आडम्बरों को करके आप अपने मन में बहुत प्रसन्न होते हैं या यह समझ बैठते हैं कि बड़ा कर्त्तव्य-पालन किया, वह इस देश की प्रजा की दृष्टि में कुछ भी नहीं है। वह इतने आडम्बर देख सुन चुकी और कल्पना कर चुकी है कि और किसी आडम्बर का असर उस पर नहीं हो सकता। आप सरहद को लोह ेकी दीवार से मजबूत करते हैं। यहां की प्रजाने पढ़ा है कि एक राजा ने पृथ्वी को काबू में करके स्वर्ग में सीढ़ी लगानी चाही थी। आप और लार्ड किचनर मिलकर जो फौलादी दीवार बनाते हैं, उससे बहुत मजबूत एक दीवार लार्ड केनिंग बना गये थे। आपने भी बम्बई की स्पीच में केनिंग का नाम लिया है। आज 46 साल हो गये, वह दीवार अटल अचल खड़ी हुई है। वह स्वर्गीया महारानी का घोषणा पत्र है, जो 1 नवम्बर, 1858 ई. को केनिंग महोदय ने सुनाया था। वही भारतवर्ष के लिये फौलादी दीवार है। वही दीवार भारत की रक्षा करती है। उसी दीवार को भारतवासी अपना रक्षक समझते हैं। उस दीवार के होते आपके या लार्ड किचनरके कोई दीवार बनाने की जरूरत नहीं है। उसकी आड़ में आप जो चाहे जितनी मजबूत दीवारों की कल्पना कर सकते हैं। आडम्बर से इस देश का शासन नहीं हो सकता। आडम्बर का आदर इस देश की कंगाल प्रजा नहीं कर सकती। आपने अपनी समझ में बहुत-कुछ किया, पर फल यह हुआ कि विलायत जा कर वह सब अपने ही मुंहसे सुनाना पड़ा। कारण यह कि करने से कहीं अधिक कहने का आपका स्वभाव है। इससे आपका करना भी कहे बिना प्रकाशित नहीं होता। यहां की अधिक प्रजा ऐसी है, जो अब तक भी नहीं जानती कि आप यहां के वयासराय और राजप्रतिनिधि हैं और आप एक बार विलायत जाकर फिर से भारत में आये हैं। आपने गरीब प्रजा की ओर न कभी दृष्टि खोलकर देखा, न गरीबों ने आपको जाना। अब भी आपकी बोतों से आपकी वह चेष्टा नहीं पायी जाती। इससे स्मरण रहे कि जब अपने पद को त्यागकर आप

फिर स्वदेश में जावेंगे तो चाहे आपको अपने कितने ही गुण कीर्तन करने का अवसर मिले, यह तो कभी न कह सकेंगे कि कभी भारत की प्रजा का मन भी अपने हाथ में किया था।

यह वह देश है, जहां की प्रजा एक दिन पहले रामचन्द्र के राजतिलक पाने के आनन्द में मस्त थी और अगले दिन अचानक रामचन्द्र बन को चले तो रोती-रोती उनके पीछे जाती थी। भरत को उस प्रजा का मन प्रसन्न करने के लिये कोई भारी दरबार नहीं करना पड़ा, हाथियों का जुलूस नहीं निकालना पड़ा, बरंच दौड़कर बनमें जाना पड़ा और रामचन्द्र को फिर अयोध्या में लाने का यत्न करना पड़ा। जब वह न आये तो उनकी खड़ाऊं को सिर पर धर कर अयोध्या तक आये और खड़ाउओं को राजसिंहासन पर रखकर स्वयं चौदह साल तक वल्कल धारण करके उनकी सेवा करते रहे। तब प्रजाने समझा कि भरत अयोध्याका शासन करने के योग्य है।

माई लार्ड! आप वत्कृता देने में बड़े दक्ष हैं। पर यहां वत्कृता कुछ और ही वजन है। सत्यवादी युधिष्ठिर के मुख से जो निकल जाता था, वही होता था। आयु भर में उसने एक बार बहुत भारी पोलिटिकल जरूरत पड़ने से कुछ सहजंसा झूठ बोलने की चेष्टा की थी। वही बात महाभारत में लिखी हुई है। जब तक महाभारत है, वह बात भी रहेगी। एक बार अपनी वत्कृताओंसे इस विषयको मिलाइये और फिर विचारिये कि इस देश की प्रजा के साथ आप किस प्रकार अपना कर्त्तव्यपालन करेंगे। साथ ही इस समय इस अधेड़ भंगड़ ब्राह्मण को अपनी भांग बूटी की फिकर करने के लिये आज्ञा दीजिये।

पीछे मत फेंकिए

माई लार्ड! सौ साल पूरे होने में अभी कई महीनों की कसर है। उस समय ईष्ट इण्डिया कम्पनी ने लार्ड कार्नवालिस को दूसरी बार इस देश का गवर्नर-जनरल बनाकर भेजा था। तब से अब तक आपही को भारतवर्ष का फिर से शासक बनकर आने का अवसर मिला है। सौ वर्ष पहले के उस समय की ओर एक बार दृष्टि कीजिये। तब में और अब में कितना अन्तर हो गया है, क्या से क्या हो गया है? जागता हुआ रंक अति चिन्ता का मारा सोजावे और स्वप्न में अपने को राजा देखे, द्वारपर हाथी झूमते देखे अथवा अलिफ-लैला के अबुल हसन की भांति कोई तरल युवक प्याले पर प्याला उड़ाता घर में बेहोश हो और जागने पर आंखें मलते-मलते अपने को बगदाद का खलीफा देखे, आलीशान सजे

महल की शोभा उसे चक्कर में डाल दे, सुन्दरी, दासियों के जेवर और कामदार वस्त्रों की चमक उसकी आंखों में चकाचौंध लगा दे तथा सुन्दर बाजों और गीतोंकी मधुर, ध्वनि उसके कानों में अमृत ढालने लगे, तब भी उसे शायद आश्चर्य न हो जितना सौ साल पहले की भारत में अग्रेजी जी राज्य की दशा को आज कल की दशाके साथ मिलाने से हो सकता है।

जुलाई सन् 1805 ई. में लार्ड कार्नवालिस दूसरी बार भारत के गवर्नर जनरल होकर कलकत्ते में पधारे थे। उस समय ईष्ट इण्डिया कम्पनी की सरकार पर चारों ओर से चिन्ताओं की भरमार हो रही थी, आशंकाएं उसे दम नहीं लेने देती थीं। हुलकर से एक नई लड़ाई होनेकी थी, सेन्धिया से लड़ाई चलती थीं। खजाने में बरकतही बरकत थीं। जमीन का कर वसूल होने में बहुत देर थी। युद्धस्थल में लड़ने वाली सेनाओं को पांच पांच महीने से तनखाह नहीं मिली थी। विलायत के धनियों में कम्पनी का कुछ विश्वास न था। सत्तर सालका बूढ़ा गवर्नर जनरल यह सब बातें देखकर घबराया हुआ था। उससे केवल यही बन पड़ा कि दूसरी बार पदा रूढ़ होने के तीन ही मास पीछे गाजीपुर में जाकर प्राण दे दिया। कई दिन तक इस बात की खबर भी लोगों ने नहीं जानी। आज विलायत से भारत तक दिन में कई बार तार दौड़ जाता है। कई एक घंटों में शिमले से कलकत्ते तक स्पेशल ट्रेन पार हो जाती है। उस समय कलकत्ते से गाजीपुर तक जाने में बड़े लाट को कितने ही दिन लगे थे। गाजीपुर में उनके लिये कलकत्ते से जल्द किसी प्रकार की सहायता पहुंचने का कुछ उपाय न था।

किन्तु अब कुछ और ही समय है। माई लार्ड! लार्ड कार्नवालिस के दूसरी बार गवर्नर जनरल होकर भारत में आने और आपके दूसरी बार आने में बड़ा अन्तर है। प्रताप आपके साथ साथ है। अंग्रेजी राज्य के भाग्य का सूर्य मध्यान्ह में है। उस समय के बड़े लाट को जितने दिन कलकत्ते से गाजीपुर जानेमें लगे होंगे, आप उनसे कम दिनोंमें विलायत से भारत में पहुंच गये। लार्ड कार्नवालिस को आते ही दो एक देशी रईसों के साथ लड़ाई करने की चिन्ता थी, आपके स्वागत के लिये कोड़ियों राजा, रईस बम्बई दौड़े गये और जहाज से उतर तेही उन्होंने आपका स्वागत करके अपने भाग्य को धन्य समझा। कितने ही बधाई देने कलकत्ते पहुंचे और कितने और चले आ रहे हैं। प्रजा की चाहे कैसी ही दशा हो, पर खजाने में रुपये उबले पड़ते हैं। इसके लिये चारों ओर से आपकी बड़ाई होती है। साख इस समय की गवर्नमेण्ट की इतनी है कि विलायत में या भारत में एक बार 'हूं' करते ही रुपये की वर्षा होने लगती है। विलायती मन्त्री आपकी

मुट्ठी में हैं। विलायत की जिस कन्सरवेटिव गवर्नमेण्टने आपको इस देश का वयासराय किया, वह अभी तक बराबर शासन की मालिक है। लिबरल निर्जीव हैं। जान ब्राइट, ग्लाडष्टोन, ब्राडला, जैसे लोगों से विलायत शून्य है, इससे आप परम स्वतन्त्र हैं। इण्डिया आफिस आपके हाथ की पुतली है। विलायत के प्रधानमन्त्री आपके प्रिय मित्र हैं। जो कुछ आपको करना है, वह विलायत में कई मास रहकर पहले ही वहां के शासकों से निश्चय कर चुके हैं। अभी आपकी चढ़ती उमर है। चिन्ता कुछ नहीं है। जो कुछ चिन्ता थी, वह भी जल्द मिट गई। स्वयं आपकी विलायत के बड़े भारी बुद्धिमानों और राजनीति-विशार दोंमें गिनती है, वरंच कह सकते हैं कि विलायत के मन्त्री लोग आपके मुंह की ओर ताकते हैं। सम्राट् का आप पर बहुत भारी विश्वास है। विलायत के प्रधान समाचार पत्र मानो आपके बन्दीजन हैं। बीच-बीच में आपका गुणगाण सुनाना पुण्य कार्य समझते हैं। सारांश यह कि लार्ड कार्नवालिस के समय और आपके समय में बड़ा ही भेद हो गया है।

संसार में अब अंग्रेजी प्रताप अखण्ड है। भारत के राजा अब आपके हुक्म के बन्द हैं। उनको लेकर चाहे जुलूस निकालिये, चाहे दरबार बनाकर सलाम कराइये, उन्हें चाहे विलायत भिजवाइये, चाहे कलकत्ते बुलवाइये, जो चाहे सो कीजिये, वह हाजिर हैं। आपके हुक्म की तेजी तिब्बत के पहाड़ों की बरफ को पिघलाती है, फारिसकी खाड़ी का जल सुखाती है, काबुल के पहाड़ों को नर्म करती है। जल, स्थल, वायु, और आकाश मण्डल में सर्वत्र आपकी विजय है। इस धराधाम में अब अंग्रेजी प्रताप के आगे कोई उंगुली उठाने वाला नहीं है। इस देश में एक महाप्रतापी राजा के प्रतापका वर्णन इस प्रकार किया जाता था कि इन्द्र उसके यहां जल भरता था, पवन उसके यहां चक्की चलाता था, चांद सूरज उसके यहां रोशनी करते थे, इत्यादि। पर अंग्रेजी प्रताप उससे भी बढ़ गया है। समुद्र अंग्रेजी राज्य का मल्लाह है, पहाड़ों की उपत्यकाएं बैठने के लिए कुर्सी मूढ़े। बिजली कलें चलाने वाली दासी और हजारों मील खबर लेकर उड़ने वाली दूती, इत्यादि इत्यादि।

आश्चर्य है माई लार्ड! एक सौ साल में अंग्रेजी राज्य और अंग्रेजी प्रताप की तो इतनी उन्नति हो पर उसी प्रतापी बृटिश राज्य के अधीन रहकर भारत अपनी रही सही हैसियत भी खो दे। इस अपार उन्नति के समय में आप जैसे शासक के जी में भारतवासियों को आगे बढ़ाने की जगह पीछे धकेलने की इच्छा उत्पन्न हो। उनका हौंसला बढ़ाने की जगह उनकी हिम्मत तोड़ने में आप अपनी

बुद्धि का अपव्यय करें। जिस जाति से पुरानी कोई जाति इस धराधाम पर मौजूद नहीं, जो हजार साल से अधिक की घोर परधीनता सहकर भी लुप्त नहीं हुई, जीती है, जिसकी पुरानी सभ्यता और विद्या की आलोचना करके विद्वान् और बुद्धिमान लोग आज भी मुग्ध होते हैं जिसने सदियों इस पृथ्वी पर अखण्ड-शासन करके सभ्यता और मनुष्यत्व का प्रचार किया, वह जाति क्या पीछे हटाने और धूल में मिला देने के योग्य है? आप जैसे उच्च श्रेणी के विद्वान-के जी में यह बात कैसे समाई कि भारतवासी बहुत-से काम करने के योग्य नहीं और उनको आपके सजाती यही कर सकते हैं? आप परीक्षा करके देखिये कि भारतवासी सचमुच उन ऊंचे से ऊंचे कामों को कर सकते हैं या नहीं, जिनको आपके सजातीय कर सकते हैं। श्रम में, बुद्धि में, विद्या में, काम में, वक्तृता में, सहिष्णुता में, किसी बात में इस देश के निवासी संसार में किसी जाति के आदमियों से पीछे रहने वाले नहीं हैं। वरंच दो एक गुण भारतवासियों में ऐसे हैं कि संसार भर में किसी जाति के लोग उनका अनुकरण नहीं कर सकते। हिन्दुस्तानी फारसी पढ़के ठीक फारिस वालों की भांति बोल सकते हैं, कविता कर सकते हैं। अंग्रेजी बोलने में वह अंग्रेजों की पूरी नकल कर सकते हैं, कण्ठ तालूको अंग्रेजों के सदृश बना सकते हैं। पर एक भी अंग्रेज ऐसा नहीं है, जो हिन्दुस्तानियों की भांति साफ हिन्दी बोल सकता हो। किसी बात में हिन्दुस्तानी पीछे रहने वाले नहीं हैं। हां दो बातों में वह अंग्रेजों की नकल या बराबरी नहीं कर सकते हैं। एक तो अपने शरीर के काले रंग को अंग्रेजों की भांति गोरा नहीं बना सकते और दूसरे अपने भाग्य को उनके भाग्य में रगड़कर बराबर नहीं कर सकते।

किन्तु इस संसार के आरम्भ में बड़ा भारी पार्थक्य होने पर भी अन्त में बड़ी भारी एकता है। समय अन्त में सबको अपने मार्ग पर ले आता है। देश पति राजा और भिक्षा माँगकर पेट भरने वाले कंगाल का परिणाम एक ही होता है। मट्टी मट्टी में मिल जाती है और यह जीते जी लुभाने वाली दुनिया यहीं रह जाती है। कितने ही शासक और कितने ही नरेश इस पृथ्वी पर हो गये, आज उनका कहीं पता निशान नहीं है। थोड़े थोड़े दिन अपनी अपनी नौबत बजा गये चले गये। बड़ी तलाश से इतिहास के पन्नों अथवा टूटे फूटे खण्डहरों में उनके दो चार चिह्न मिल जाते हैं। माई लार्ड! बीते हुए समय को फिर लौटा लेने की शक्ति किसी में नहीं है, आपमें भी नहीं है। दूर की बात दूर रहे, इन पिछले सौ साल ही में कितने बड़े लाट आये और चले गये। क्या उनका समय फिर लौट सकता है? कदापि नहीं। विचारिये तो मानो कल आप आये थे, किन्तु छः साल

बीत गये। अब दूसरी बार आने के बाद भी कितने ही दिन बीत गये तथा बीत जाते हैं। इसी प्रकार उमरें बीत जावेंगी, युग बीत जावेंगे। समय के महा समुद्र में मनुष्य की आयु एक छोटी-सी बूँद की भी बराबरी नहीं कर सकती। आप में शक्ति नहीं है कि पिछले छः वर्षों को लौटा सकें या उनमें जो कुछ हुआ है उसे अन्यथा कर सकें। दो साल आपके हाथ में अवश्य हैं। इनमें जो चाहें कर सकते हैं। चाहें तो इस देश की 30 करोड़ प्रजा को अपनी अनुरक्त बना सकते हैं और इस देश के इतिहास में अच्छे वयासरायों में अपना नाम छोड़ जा सकते हैं। नहीं तो यह समय भी बीत जावेगा और फिर आपका करने धरने का अधिकार ही कुछ न रहेगा।

विक्रम, अशोक अकबर के यह भूमि साथ नहीं गई। औरंगजेब, अलाउद्दीन इसे मुट्ठी में दबा कर नहीं रख सके। महमूद, तैमूर और नादिर, इसे लूटके माल के साथ ऊंटों और हाथियों पर लाद कर न ले जा सके। आगे भी यह किसी के साथ न जावेगी, चाहे कोई कितनी ही मजबूती क्यों न करे। इस समय भगवान से इसे एक और ही जाति के हाथ में अर्पण किया है, जिसकी बुद्धि विद्या और प्रताप का संसार भर में डंका बज रहा है। माई लार्ड! उसी जाति की ओर से आप इस देश की 30 करोड़ प्रजा के शासक हैं।

अब यह विचारना आप ही के जिम्मे है कि इस देश की प्रजा के साथ आपका क्या कर्त्तव्य है। हजार साल से यह प्रजा गिरी दशा में है। क्या आप चाहते हैं कि यह और भी सौ पचास साल गिरती चली जावे? इसके गिराने में बड़े से बड़ा इतना ही लाभ है कि कुछ संकीर्ण हृदय शासकों की य थेच्छाचारिता कुछ दिन और चल सकती है। किन्तु इसके उठाने और सम्हालने में जो लाभ हैं, उनकी तुलना नहीं हो सकती है। इतिहास में सदा नाम रहेगा कि अंग्रेजों ने एक गिरी जाति के तीस करोड़ आदयियों को उठाया था। माई लार्ड! दोनों मे जो बात पसन्द हो, वह कर सकते हैं। कहिये क्या पसन्द है? पीछे हटाना या आगे बढ़ाना?

आशा का अन्त पीछे आगे

माई लार्ड! अबके आपके भाषण ने नशा किरकिरा कर दिया। संसार के सब दुःखों और समस्त चिन्ताओं को जो शिवशम्भु शर्मा दो चुल्लू बूटी पीकर भुला देता था, आज उसका उस प्यारी विजय पर भी मन नहीं है। आशासे बँधा हुआ यह संसार चलता है। रोगी को रोग से कैदी को कैद से, ऋणी को ऋण से कंगाल को दरिद्रता से, – इसी प्रकार हरेक क्लेशित पुरुष को एक दिन अपने

क्लेश से मुक्त होने की आशा होती है। चाहे उसे इस जीवन में क्लेश से मुक्ति न मिले, पर आशा के सहारे इतना होता है कि वह धीरे-धीरे अपने क्लेशों को झेलता हुआ एक दिन इस क्लेशमय जीवन से तो मुक्त हो जाता है। पर हाय। जब उसकी यह आशा भी भंग हो जाय, उस समय उसके कष्ट का क्या ठिकाना! -

'किस्मत पे उस मुसाफिरे खस्ता के रोइये।
जो थक गया हो बैठके मंजिलके सामने।'।

बड़े लाट होकर आपके भारत में पदार्पण करने के समय इस देश के लोग श्रीमान्य-से जो जो आशाएं करते और सुख स्वप्न देखते थे, वह सब उड़न छू हो गये। इस कलकत्ता महानगरी के समाचार पत्र कुछ दिन चौंक चौंक पड़ते थे कि आज बड़े लाट अमुक मोड़ पर वेश बदले एक गरीब काले आदमी से बातें कर रहे थे, परसों अमुक आफिस में जाकर काम की चक्की में पिसते हुए क्लर्को की दशा देख रहे थे और उनसे कितनी ही बातें पूछते जाते थे। इससे हिन्दू समझने लगे कि फिर से विक्रमादित्य का आविर्भाव हुआ या अकबर का अमल हो गया। मुसलमान ख्याल करने लगे, खलीफा हारूंरशीद का जमाना आ गया। पारसियों ने आपको नौशीरवाँ समझने की मोहलत पाई थी या नहीं, ठीक नहीं कहा जा सकता। क्योंकि श्रीमान्य-ने जल्द अपने कामों से ऐसे जल्दबाज लोगों को कष्ट-कल्पना करने के कष्ट से मुक्त कर दिया था। वह लोग थोड़े ही दिनों में इस बात के समझने के योग्य हो गये थे कि हमारा प्रधान शासक न विक्रम के रंग-ढंग का है, न हारूं या अकबर के, उसका रंग ही निराला है। किसी से नहीं मिलता।

माई लार्ड! इस देश की दो चीजों में अजब तासीर है। एक यहां के जलवायु की और दूसरे यहां के नमक कीं, जो उसी जलवायु से उत्पन्न होता है। नीरस से नीरस शरीर में यहां का जलवायु नमकीनी ला देता है। मजा यह कि उसे उस नमकीनी की खबर तक नहीं होती। एक फारिस का कवि कहता है कि हिन्दुस्तान में एक हरी पत्ती तक बे नमक नहीं है, मानो यह देश नमक से सींचा गया है। किन्तु शिवशम्भु शर्मा का विचार इस कवि से भी कुछ आगे है। वह समझता है कि यह देश नमक की एक महाखानि है, इसमें जो पड़ गया, वही नमक बन गया। श्रीमान् कभी चाहें तो सांभर-झील के तटपर खड़े होकर देख सकते हैं, जो कुछ उसमें गिर जाता, वही नमक बन जाता है। यहां के जलवायु से अलग खड़े होकर कितनों हीने बड़ी-बड़ी अटकलें लगाई और लम्बे

चौड़े मनसूबे बांधे पर यहां के जलवायु का असर होते ही वह सब काफूर हो गये।

अफसोस माई लार्ड! यहां के जलवायु की तासीर ने आप में अपनी पिछली दशा के स्मरण रखने की शक्ति नहीं रहने दी। नहीं तो अपनी छः साल पहले की दशा से अब की दशा का मिलान करके चकित होते। घबरा के कहते कि ऐं! मैं क्या हो गया? क्या मैं वही हूं, जो विलायत से भारत की ओर चलने से पहले था? बम्बई में जहाज से उतर कर भूमि पर पांव रखते ही यहां के जलवायु का प्रभाव आप पर आरम्भ हो गया था। उसके प्रथम फलस्वरुप कलकत्ते में पदार्पण करते ही आपने यहां के म्यूनिसिपल कारपोरेशन की स्वाधीनता की समाप्ति की। जब वह प्रभाव कुछ और बढ़ा तो अकाल पीड़ितों की सहायता करते समय आपकी समझ में आने लगा कि इस देश के कितने ही अभागे सचमुच अभागे नहीं, वरंच अच्छी मजदूरी के लालच से जबरदस्ती अकाल पीड़ितों में मिलकर दयालु सरकार को हैरान करते हैं। इससे मजदूरी कड़ी की गई।

इसी प्रकार जब प्रभाव तेज हुआ तो आपने अकाल की तरफ से आंखों पर पट्टी बांधकर दिल्ली-दरबार किया।

अन्त को गत वर्ष आपने यह भी साफ कह दिया कि बहुत से पद ऐसे हैं जिनको पैदाइशी तौर से अंग्रेज ही पाने के योग्य हैं। भारतवासियों की सरकार जो देती है, वह भी उनकी हैसियत से बढ़कर है। तब इस देशके लोगों ने सभक लिया था कि अब श्रीमान्-पर यहां के जलवायु का पूरा सिक्का जम गया। उसी समय आपको स्वदेशदर्शन की लालसा हुई। लोग समझते चलो अच्छा हुआ, जो हो चुका, वह हो चुका, आगे की तासीर की अधिक उन्नति से पीछा छूटा। किन्तु आप कुछ न समझे। कोरिया में जब श्रीमान्-की आयु अचानक सात साल बढ़कर चालीस हो गई, उस समय भी श्रीमान्-की समझ में आ गया था कि वहीं की सुन्दर आवहवा के प्रताप से आप चालीस साल के होने पर भी बत्तीस तेंतीस के दिखाई देते हैं। पर इस देश की आवहवा की तासीर आपके कुछ समझ में न आई। वह विलायत में भी श्रीमान्-के साथ लगी गई और जब तक वहां रहे, अपना जोर दिखाती रही। यहां तक कि फिर आपको एक बार इस देश में उठा लाई, किसी विन वाधा की परवा न की।

माई लार्ड! इस देश का नमक यहां के जलवायु का साथ देता है, क्योंकि उसी जलवायु से उसका जन्म है। उसकी तासीर भी साथ-साथ होती रही। वह

पहले विचार-बुद्धि खोता है। पीछे दया और सहृदयता को भगाता है और उदारता को हजम कर जाता है। अन्त को आंखों पर पट्टी बांधकर, कानों में ठीठे ठोककर, नाक में नकेल डालकर, आदमी को जिधर-तिधर घसीटे फिरता है और उसके मुंहसे खुल्लम खुल्ला इस देश की निन्दा कराता है। आदमी के मन में वह यही जमा देता है कि जहां का खाना वहां की खूब निन्दा करना और अपनी शेखी मारते जाना। हम लोग उस नमक की तासीर से बे असर नहीं हैं। पर हमारी हड्डियां उसी से बनी हैं, इस कारण हमें इतना ज्ञान रहता है कि हमारे देश के नमक की क्या तासीर है। हम लोग खूब जानते थे कि यदि श्रीमान् कहीं दूसरी बार भारत में आ गये तो एक दम नमक की खानि में जाकर नमक हो जावेंगे। इसी से चाहते थे कि दोबारा आप न आवें। पर हमारी पेश न गई। आप आये और आते ही उस नमक की तासीर का फल अपने कौंसिल और कानवोकेशन में प्रगट कर डाला।

इतने दिन आप सरकारी भेदों के जानने से, अच्छे पद पाने से, उन्नति की बातें सोचने से, सुगमता से शिक्षा लाभ करने से, अपने स्वत्वों के लिये पार्लीमेण्ट आदि में पुकारने से, इस देश के लोगों को रोकते रहे। आपकी शक्ति में जो कुछ था, वह करते रहे। पर उस पर भी सन्तोष न हुआ, भगवान की शक्ति पर भी हाथ चलाने लगे। जो सत्यप्रियता इस देश को सृष्टि के आदि से मिली है, जिस देश का ईश्वर 'सत्यंज्ञानमनन्तम्ब्रह्म' है, वहां के लोगों को सभा में बुलाके ज्ञानी और विद्वान्-का चोला पहनकर उनके मुंह पर झूठा और मक्कार कहने लगे। विचारिये तो यह कैसे अध:पतन की बात है? जिस स्वदेश को श्रीमान्-ने आदर्श सत्यका देश और वहां के लोगों को सत्यवादी कहा है, उसका आला नमूना क्या श्रीमान् ही हैं? यदि सचमुच विलायत वैसा ही देश हो, जैसा आप फरमाते हैं और भारत भी आपके कथनानुसार मिथ्यावादी और धूर्त देश हो, तो भी तो क्या कोई इस प्रकार कहता है? गिराके ठोकर मारना क्या सज्जन और सत्यवादी का काम है? अपनी सत्यवादिता प्रकाश करने के लिये दूसरे को मिथ्यावादी कहना ही क्या सत्यवादिता का सबूत है?

माई माई लार्ड! जब आपने अपने शासक होने के विचार को भूलकर इस देश की प्रजा के हृदय में चोट पहुंचाई है तो दो एक बातें पूछ लेने में शायद कुछ गुस्ताखी न होगी। सुनिये, विजित और विजेतामें बड़ा अन्तर है। जो भारतवर्ष हजार साल से विदेशीय विजेताओं के पांवों में लोट रहा है, क्या उसकी प्रजा की सत्यप्रियता विजेता इंगलेण्ड के लोगों की सत्यप्रियता का मुकाबिला कर

सकती है। यह देश भी यदि विलायत की भांति स्वाधीन होता और यहां के लोग ही यहां के राजा होते तब यदि अपने देश के लोगों को यहा के लोगों से अधिक सच्चा साबित कर सकते तो आपकी अवश्य कुछ बहादुरी होती। स्मरण करिये, उन दिनों को कि जब अंग्रेजों के देश पर विदेशियों का अधिकार था। उस समय आपके स्वदेशियों की नैतिक दशा कैसी थी, उसका विचार तो कीजिये। यह वह देश है कि हजार साल पराये पांव के नीचे रहकर भी एक दम सत्यता से च्युत नहीं हुआ है। यदि आपका युरोप या इंगलेण्ड दस साल भी पराधीन हो जाते तो आपको मालूम पड़े कि श्रीमान्-के स्वदेशीय कैसे सत्यवादी और नीति-परायण हैं। जो देश कर्मवादी है, वह क्या कभी असत्यवादी हो सकता है? आपके स्वदेशीय यहां बड़ी-बड़ी इमारतें में रहते हैं, जैसी रुचि हो, वैसे पदार्थ भोग सकते हैं। भारत आपके लिये भोग्य भूमि है। किन्तु इस देश के लाखों आदमी, इसी देश में पैदा होकर आवारा कुत्तों की भांति भटक-भटककर मरते हैं। उनको दो हाथ भूमि बैठने को नहीं, पेट भरकर खाने को नहीं, मैले चिथड़े पहनकर उमरें बिता देते हैं और एक दिन कहीं पड़कर चुप-चाप प्राण दे देते हैं। हाल की इस सर्दी में कितनों ही के प्राण जहां-तहां निकल गये। इस प्रकार क्लेश पाकर मरने पर भी क्या कभी वह लोग यह करते हैं कि पापी राजा है, इससे हमारी यह दुगाति है? माई लार्ड! वह कर्मवादी हैं, वह यही समझते हैं कि किसी का कुछ दोष नहीं है - सब हमारे पूर्व कर्मो का दोष है। हाय। हाय। ऐसी प्रजा को आप धूर्त कहे हैं।

कभी इस देश में आकर आपने गरीबों की ओर ध्यान न दिया। कभी यहां की दीन भूखी प्रजा की दशा का विचार न किया। कभी दस मीठे शब्द सुनाकर यहां के लोगों को उत्साहित नहीं किया - फिर विचारिये तो गालियां यहां के लोगों को आपने किस कृपा के बदले में दीं? पराधीनता की सबके जी में बड़ी भारी चोट होती है। पर महारानी विक्टोरिया के सदय बरतावने यहां के लोगों के जी से वह दुःख भुला दिया था। इस देश के लोग सदा उनको माता तुल्य समझते रहे, अब उनके पुत्र महाराज एडवर्ड पर भी इस देश के लोगों की वैसी ही भक्ति है। किन्तु आप उन्हीं सम्राट् एडवर्ड के प्रतिनिधि होकर इस देश की प्रजा के अत्यन्त अप्रिय बने हैं। यह इस देश के बड़े ही दुर्भाग्य की बात है। माई माई लार्ड! इस देश की प्रजा को आप नहीं चाहते और वह प्रजा आपको नहीं चाहती, फिर भी आप इस देश के शासक हैं और एक बार नहीं दूसरी बार शासक हुए हैं, यही विचार विचारकर इस अधबूढ़े भंगड़ ब्राह्मण का नशा किरकिरा हो-जाता है।

एक दुराशा

नारंगी के रस में जाफरानी वसन्ती बूटी छानकर शिवशम्भु शर्मा खटिया पर पड़े मौजों का आनन्द ले रहे थे। ख्याली घोड़े की बागें ढीली कर दी थीं। वह मनमानी जकन्दें भर रहा था। हाथ-पावों को भी स्वाधीनता दी गई थी। वह खटिया के तूल अरज की सीमा उल्लंघन करके इधर-उधर निकल गये थे। कुछ देर इसी प्रकार शर्माजी का शरीर खटिया पर था और ख्याल दूसरी दुनिया में।

अचानक एक सुरीली गाने की आवाज ने चौंका दिया। कन-रसिया शिवशम्भु खटिया पर उठ बैठे। कान लगाकर सुनने लगे। कानों में यह मधुर गीत बार-बार अमृत ढालने लगा -

चलो-चलो आज, खेलें होली कन्हैया घर।

कमरे से निकल कर बरामदे में खड़े हुए। मालूम हुआ कि पड़ौस में किसी अमीर के यहां गाने-बजाने की महफिल हो रही है। कोई सुरीली लय से उक्त होली गा रहा है। साथ ही देखा बादल घिरे हुए हैं, बिजली चमक रही है, रिमझिम झड़ी लगी हुई है। वसन्त में सावन देखकर अकल जरा चक्कर में पड़ी। विचारने लगे कि गाने वाले को मलार गाना चाहिये था, न कि होली। साथ ही ख्याल आया कि फागुन सुदी है, वसन्त के विकाश का समय है, वह होली क्यों न गावे? इसमें तो गाने वाले की नहीं, विधि की भूल है, जिसने वसन्त में सावन बना दिया है। कहां तो चाँदनी छिटकी होती, निर्मल वायु बहती, कोयल की कूक सुनाई देती। कहां भादों की-सी अन्धियारी है, वर्षा की झड़ी लगी हुई है। ओह। कैसा ऋतु विपर्यय है।

इस विचार को छोड़कर गीतके अर्थ का विचार जी में आया। होली खिलैया कहते हैं कि चलो आज कन्हैया के घर होली खेलेंगे। कन्हैया कौन? ब्रज के राजकुमार और खेलने वाले कौन? उनकी प्रजा - ग्वालबाल। इस विचार ने शिवशम्भु शर्मा को और भी चौंका दिया कि ऐं! क्या भारत में ऐसा समय भी था, जब प्रजा के लोग राजा के घर जाकर होली खेलते थे और राजा-प्रजा मिलकर आनन्द मनाते थे। क्या इसी भारत में राजा लोग प्रजा के आनन्द को किसी समय अपना आनन्द समझते थे? अच्छा यदि आज शिवशंभु शर्मा अपने मित्र वर्ग सहित अबीर गुलाल की झोलियां, भूरे रंग की चिकारियां लिये अपने राजा के घर होली खेलने जाये तो कहां जाये? राजा दूर सात समुद्र पार है। राजा का केवल नाम सुना है। न राजा को शिवशंभुने देखा, न राजाने शिवशंभुको। खैर राजा नहीं, उसने अपना प्रतिनिधि भारत में भेजा है, कृष्ण द्वारिका में हें, पर

उध्वको प्रतिनिधि बनाकर ब्रजवासियों को सन्तोष देने के लिए ब्रज में भेजा है। क्या उस राजा-प्रतिनिधि के घर जाकर शिवशंभु होली नहीं खेल सकता?

ओफ। यह विचार वैसा ही बेतुका है, जैसे अभी वर्षा में होली गाई जाती थी। पर इसमें गाने वाले का क्या दोष है? वह तो समय समझकर ही गा रहा था। यदि वसन्त में वर्षाकी झाड़ी लगे तो गाने वालों को क्या मलार गाना चाहिये? सचमुच बड़ी कठिन समस्या है। कृष्ण है, उध्व है, पर ब्रजवासी उनके निकट भी नहीं फटकने पाते। राजा है, राजप्रतिनिधि है, पर प्रजा की उन तक रसाई नहीं। सूर्य है, धूप नहीं। चन्द्र है, चाँदनी नही। माई लार्ड नगर ही में है, पर शिवशम्भु उसके द्वार तक नहीं फटक सकता है, उसके घर चलकर होली खेलना तो विचार ही दूसरा है। माई लार्ड के घर तक प्रजा की बात नहीं पहुंच सकती, बात की हवा नहीं पहुंच सकती। जहांगीर की भांति उसने अपने शयनागार तक ऐसा कोई घण्टा नहीं लगाया, जिसकी जंजीर बाहर से हिलाकर प्रजा अपनी फरियाद उसे सुना सके। न आगे को लगाने की आशा है। प्रजा की बोली वह नहीं समझता, उसकी बोली प्रजा नहीं समझती। प्रजा के मन का भाव वह न समझता है, न समझना चाहता है। उसके मन का भाव न प्रजा समझ सकती है, न समझने का कोई उपाय है। उसका दर्शन दुर्लभ है। द्वितीया के चन्द्र की भांति कभी-कभी बहुत देर तक नजर गड़ाने से उसका चन्द्रानन दिख जाता है, तो दिख जाता है। लोग उंगलियों से इशारे करते हैं कि वह है। किन्तु दूज के चान्द के उदय का भी एक समय है। लोग उसे जान सकते हैं। माई लार्ड के मुखचन्द्र के उदय के लिये कोई समय भी नियत नहीं। अच्छा, जिस प्रकार इस देश के निवासी माई लार्ड का चन्द्रानन देखने को टकट की लगाये रहते हैं, या जैसे शिवशम्भु शर्मा के जी में अपने देश के माई लार्ड से होली खेलने की आई इस प्रकार कभी माई लार्ड को भी इस देश के लोगों की सुध आती होगी? क्या कभी श्रीमान्-का जी होता होगा कि अपनी प्रजा में जिसके दण्ड-मुण्ड के विधाता होकर आये हैं किसी एक आदमी से मिलकर उसके मन की बात पूछें या कुछ आमोद-प्रमोद की बातें करके उसके मन को टटोलें? माई लार्ड को ड्यूटी का ध्यान दिलाना सूर्य को दीपक दिखाना है। वह स्वयं श्रीमुख से कह चुके हैं कि ड्यूटी में बँधा हुआ मैं इस देश में फिर आया। यह देश मुझे बहुत ही प्यारा है। इससे ड्यूटी और प्यार की बात श्रीमान्-के कथन से ही तय हो जाती है। उसमें किसी प्रकार की हुज्जत उठाने की जरूरत नहीं। तथापि यह प्रश्न आप से आप जी में उठता है कि इस देश की प्रजा से प्रजा के माई लार्ड का निकट होना और प्रजा के

लोगों की बात जानना भी उस ड्यूटी की सीमा तक पहुंचता है या नही? यदि पहुंचता है तो क्या श्रीमान् बता सकते हैं कि अपने छः साल के लम्बे शासन में इस देश की प्रजा को क्या जाना और उससे क्या सम्बन्ध उत्पन्न किया? जो पहरे दार सिरपर फेंटा बांधे हाथ में संगीनदार बन्दूक लिये काठ के पुतलों की भांति गवर्न मेण्ट हौसके द्वार पर दण्डायमान रहते हैं, या छाया की मूर्ति की भांति जरा इधर-उधर हिलते जुलते दिखाई देते हैं, कभी उनको भूले भटके आपने पूछा है कि कैसी गुजरती है? किसी काले प्यादे चपरासी या खानसामा आदि से कभी आपने पूछा कि कैसे रहते हो? तुम्हारे देश की क्या चाल-ढाल है? तुम्हारे देश के लोग हमारे राज्य को कैसा समझते हैं? क्या इन नीचे दरजे के नौकर-चाकरों को कभी माई लार्ड के श्रीमुख से निकले हुए अमृत रूपी वचनों के सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ या खाली पेड़ों पर बैठी चिड़ियों का शब्द ही उनके कानों तक पहुंच कर रह गया? क्या कभी सैर तमाशे में टहलने के समय या किसी एकान्त स्थान में इस देश के किसी आदमी से कुछ बातें करने का अवसर मिला? अथवा इन देश के प्रतिष्ठित बेगरज आदमी को अपने घर पर बुलाकर इस देश के लोगों के सच्चे विचार जानने की चेष्टा की? अथवा कभी विदेश या रियासतों के दौर में उन लोगों के सिवा जो झुक-झुक कर लम्बी सलामें करने आये हों, किसी सच्चे और बेपरवा आदमी से कुछ पूछने या कहने का कष्ट किया? सुनते हैं कि कलकत्ते में श्रीमान्-ने कोना कोना देख डाला। भारत में क्या भीतर और क्या सीमाओं पर कोई जगह देखे बिना नहीं छोड़ी। बहुतों का ऐसा ही विचार था। पर कलकत्ता यूनिवर्सिटी के परीक्षोत्तीर्ण छात्रों की सभा में चौंसलर का जामा पहनकर माई लार्डने जो अभिज्ञता प्रगट की, उससे स्पष्ट हो गया कि जिन आंखों से श्रीमान्-ने देखा, उनमें इस देश की बातें ठीक देखने की शक्ति न थी।

सारे भारत की बात जाय, इस कलकत्ते ही में देखने की इतनी बातें हैं कि केवल उनको भली भांति देख लेने से भारतवर्ष की बहुत सी बातों का ज्ञान हो सकता है। माई लार्ड के शासनके छः साल हाल वेलके स्मारक में लाठ बनाने, ब्लैक-हालका पता लगाने, अख्तरलोनी की लाठ को मैदान से उठवा कर वहां विक्टोरिया मिमोरियल-हाल बनवाने, गवर्नमेण्ट हौ सके आस-पास अच्छी रोशनी, अच्छे फुटपाथ और अच्छी सड़कों का प्रबन्ध कराने में बीत गये। दूसरा दौर भी वैसे ही कामों मे बीत रहा है। सम्भव है कि उसमें भी श्रीमान्-के दिल पसन्द अंग्रेजी मुहल्लों में कुछ और भी बड़ी-बड़ी सड़कें निकल जायें और

गवर्नमेण्ट हौ सकी तरफ के स्वर्ग की सीमा और बढ़ जावे। पर नगर जैसा अन्धेरेमें था, वैसा ही रहा, क्योंकि उसकी असली दशा देखने के लिये और ही प्रकार की आंखों की जरूरत है। जब तक वह आंखें न होंगी, यह अंधेर यों ही चला जावेगा। यदि किसी दिन शिवशम्भु शर्मा के साथ माई लार्ड नगर की दशा देखने चलते तो वह देखते कि इस महानगर की लाखों प्रजा भेड़ों और सुअरों की भांति सड़े-गन्दे झोपड़ो में पड़ी लोटती है। उनके आस पास सड़ी बदबू और मैले सड़े पानी के नाले बहते हैं, कीचड़ और कूड़े के ढेर चारों ओर लगे हुए हैं। उनके शरीरों पर मैले-कुचैले फटे-चिथड़े लिपटे हुए हैं। उनमें से बहुतों की आजीवन पेट भर अन्न और शरीर ढाकने को कपड़ा नहीं मिलता। जाड़ों में सर्दी से अकड़ कर रह जाते हैं और गर्मी में सड़कों पर घुमते तथा जहां तहां पड़ते फिरते हैं। बरसात में सड़े सीले घरों में भींगे पड़े रहते हैं। सारांश यह कि हरेक ऋतु की तीव्रता में सबसे आगे मृत्यु के पथका वही अनुगमन करते हैं। मौत ही एक है, जो उनकी दशा पर दया करके जल्द-जल्द उन्हें जीवन रूपी रोग के कष्ट से छुड़ाती है।

परन्तु क्या इनसे भी बढ़ कर और दृश्य नहीं है? हां हैं, पर जरा और स्थिरता से देखने के हैं। बालू में बिखरी हुई चीनी को हाथी अपने सूंड़ से नहीं उठा सकता, उसके लिये चिंवटीकी जिह्वा दरकार है। इसी कलकत्ते में इसी इमारतों के नगर में माई लार्ड की प्रजा में हजारों आदमी ऐसे हैं। जिनको रहने को सड़ा झोपड़ा भी नहीं है। गलियों और सड़कों पर घूमते-घूमते जहां जगह देखते हैं, वहीं पड़ रहते हैं। पहरे वाला आकर डण्डा लगाता है तो सरक कर दूसरी जगह जा पड़ते हैं। बीमार होते हैं तो सड़कों ही पर पड़े पांव पीटकर मर जाते हैं। कभी आग जलाकर खुले मैदान में पड़े रहते हैं। कभी-कभी हलवाइयों की भट्टियों से चमट कर रात काट देते हैं। नित्य इनकी दो चार लाशें जहां तहां से पड़ी हुई पुलिस उठाती है। भला माई लार्ड तक उनकी बात कौन पहुंचावे? दिल्ली दरबार में भी जहां सारे भारत का वैभव एकत्र था, सैकड़ों ऐसे लोग दिल्लीकी सड़कोंपर पड़े दिखाई देते थे, परन्तु उनकी ओर देखनेवाला कोई न था। यदि माई लार्ड एक बार इन लोगोंको देख पाते तो पूछनेको जगह हो जाती कि वह लोग भी बृटिश राज्यके सिटिजन हैं वा नहीं? यदि हैं तो कृपा पूर्वक पता लगाइये कि उनके रहनेके स्थान कहां हैं और बृटिश राज्यसे उनका क्या नाता है? क्या कहकर वह अपने राजा और उसके प्रतिनिधिको सम्बोधन करें? किन शब्दोंमें बृटिश राज्यको असीस दें? क्या यों कहें कि जिस बृटिश राज्यमें हम

अपनी जन्मभूमिमें एक उंगल भूमिके अधिकारी नहीं, जिसमें हमारे शरीरको फटे चिथड़े भी नहीं जुड़े और न कभी पापी पेटको पूरा अन्न मिला, उस राज्य की जय हो। उसका राजप्रतिनिधि हाथियों का जुलूस निकालकर सबसे बड़े हाथीपर चंवर छत्र लगा कर निकले और स्वदेश में जाकर प्रजाके सुखी होने का डंका बजावे?

इस देश में करोड़ों प्रजा ऐसी है, जिसके लोग जब संध्या सवेरे किसी स्थान पर एकत्र होते हैं तो महाराज विक्रमकी चर्चा करते हैं और उन राजा महाराजोंकी गुणावली वर्णन करते हैं, जो प्रजा का दु:ख मिटाने और उनके अभावोंका पता लगानेके लिये रातोंको देश बदलकर निकला करते थे। अकबरके प्रजापालनकी और बीरबलके लोकरञ्जनकी कहानियां कहकर वह जी बहलाते हैं और समझते हैं कि न्याय और सुखका समय बीत गया। अब वह राजा संसारमें उत्पन्न नहीं होते, जो प्रजाके सुख दु:खकी बातें उनके घरोंमें आकर पूछ जाते थे। महारानी विक्टोरियाको वह अवश्य जानते हैं कि वह महारानी थीं और अब उनके पुत्र उनकी जगह राजा और इस देशके प्रभु हुए है। उनको इस बातकी खबर तक भी नहीं कि उनके प्रभुके कोई प्रतिनिधि होते हैं और वही इस देशके शासनके मालिक होते हैं तथा कभी-कभी इस देश की तीस करोड़ प्रजा का शासन करने का घमण्ड भी करते हैं। अथवा मन चाहे तो इस देश के साथ बिना कोई अच्छा बरताव किये भी यहां के लोगों को झूठा, मक्कार आदि कहकर अपनी बड़ाई करते हैं।

इन सब विचारों ने इतनी बात तो शिवशम्भु के जा में भी पक्की कर दी कि अब राजा प्रजा के मिलकर होली खेलने का समय गया। जो बाकी था, वह कश्मीर-नरेश महाराज रणवीर सिंह के साथ समाप्त हो गया। इस देश में उस समय के फिर लौटने की जल्द आशा नहीं। इस देश की प्रजा का अब वह भाग्य नहीं है। साथ ही किसी राजपुरुष का भी ऐसा सौभाग्य नहीं है, जो यहां की प्रजा के अकिंचन प्रेम के प्राप्त करने की परवा करे। माई लार्ड अपने शासन-कालका सुन्दर से सुन्दर सचित्र इतिहास स्वयं लिखवा सकते हैं, वह प्रजा के प्रेम की क्या परवा करेंगे? तो भी इतना सन्देश भंगड़ शिवशम्भु शर्मा अपने प्रभु तक पहुंचा देना चाहता है कि आपके द्वार पर होली खेलने की आशा करने वाले एक ब्राह्मण को कुछ नहीं तो कभी-कभी पागल समझकर ही स्मरण कर लेना। वह आपकी गूंगी प्रजा का एक वकील है, जिसके शिक्षित होकर मुंह खोलने तक आप कुछ करना नहीं चाहते।

बमुलाजिमाने सुलतां कै रसानद, ई दुआरा?
कि बशुक्रे बादशाही जे नजर मरां गदारा।

विदाई सम्भाषण

माई लार्ड! अन्तको आपके शासनकाल का इस देश में अन्त हो गया। अब आप इस देश से अलग होते हैं। इस संसार में सब बातों का अन्त है। इससे आपके शासन कालका भी अन्त होता, चाहे आपकी एक बार की कल्पना के अनुसार आप यहा के चिरस्थायी वयासराय भी हो जाते। किन्तु इतनी जल्दी वह समय पूरा हो जायेगा ऐसा विचार न आप ही का था, व इस देश के निवासियों का। इससे जान पड़ता है कि आपके और यहां के निवासियों के बीच में कोई तीसरी शक्ति और भी है? जिस पर यहां वालों का तो क्या आपका भी काबू नहीं है।

बिछड़न-समय बड़ा करुणोत्पादक होता है। आपको बिछड़ते देखकर आज हृदय में बड़ा दु:ख है। माई माई लार्ड! आपके दूसरी बार इस देश में आने से भारतवासी किसी प्रकार प्रसन्न न थे। वह यही चाहते थे कि आप फिर न आवें। पर आप आये और उससे यहां के लोग बहुत ही दु:खित हुए। वह दिन रात यही मनाते थे कि जल्द श्रीमान् यहां से पधारे। पर अहो। आज आपके जाने पर हर्ष की जगह विषाद होता है। इसी से जाना कि बिछड़न-समय बड़ा करुणोत्पादक होता है। बड़ा पवित्र, बड़ा निर्मल और कोमल होता है। बैरभाव छूटकर शान्त रसका आविर्भाव उस समय होता है। माई लार्ड का देश देखने का इस दीन भंगड़ ब्राह्मण को कभी इस जन्म में सौभाग्य नहीं हुआ। इससे नहीं जानता कि वहां बिछड़ने के समय लोगों का क्या भाव होता है। पर इस देश के पशु-पक्षियों को भी बिछड़ने के समय उदास देखा है। एक बार शिवशम्भु के दो गाय थीं। उनमें एक अधिक बलवाली थी। वह कभी-कभी अपने सींगों की टक्कर से दूसरी कमजोर गाय को गिरा देती थी। एक दिन वह टक्कर मारने वाली गाय पुरोहित को दे दी गई। देखा कि दुर्बल गाय उसके चले जाने से प्रसन्न नहीं हुई, वरंच उस दिन वह भूखी खड़ी रही, चारा छुआ तक नहीं। माई माई लार्ड! जिस देश के पशुओं की बिछड़ते समय यह दशा होती है, वहां के मनुष्यों की कैसी दशा हो सकती है, इसका अन्दाजा लगाना कठिन नहीं है।

आगे भी इस देश में जो प्रधान शासक आये अन्त में उनको जाना पड़ा। इससे आपका जाना भी परम्परा की चाल से कुछ अलग नहीं है, तथापि आपके शासन कालका नाटक घोर दु:खान्त है और अधिक आश्चर्य की बात यह है कि

दर्शक तो क्या स्वयं सूत्रधार भी नहीं जानता था कि उसने जो खेल सुखान्त समझकर खेलना आरम्भ किया था, वह दु:खान्त हो जावेगा। जिसके आदि में सुख था, मध्य में सीमा से बाहर सुख था, उसका अन्त ऐसे घोर दु:ख के साथ कैसे हुआ। आह। घमण्डी खिलाड़ी समझता है कि दूसरों को अपनी लीला दिखाता हूं, किन्तु परदे के पीछे एक और ही लीलामय की लीला हो रही है, यह उसे खबर नहीं।

इस बार बम्बई में उतरकर, माई लार्ड! आपने जो जो इरादे जाहिर किये थे, जरा देखिये तो उनमें से कौन-कौन पूरे हुए। आपने कहा था कि यहां से जाते समय भारतवर्ष को ऐसा कर जाऊंगा कि मेरे बाद आने वाले बड़े लाटों को वर्षो तक कुछ करना न पड़ेगा, वह कितने ही वर्षो सुख की नींद सोते रहेंगे। किन्तु बात उल्टी हुई। आपको स्वयं इस बार बेचैनी उठानी पड़ी है और इस देश में जैसी अशान्ति आप फैला चले हैं, उसके मिटाने में आपके पद पर आने वालों को न जाने कब तक नींद और भूख हराम करनी पड़ेगी। इस बार आपने अपना बिस्तर गर्म राख पर रखा है और भारतवासियों को गर्म तवे पर पानी की बून्दों की भांति नचाया है। आप स्वयं भी सुखी न हो सके और यहां की प्रजा को सुखी न होने दिया, इसका लोगों के चित्त पर बड़ा ही दु:ख है।

विचारिये तो क्या शान आपकी इस देश में थी और अब क्या हो गई। कितने ऊंचे होकर आप कितने नीचे गिरे। अलिफलैला के अलहदीनने चिराग रगड़कर और अबुलहसनने बगदाद के खलीफा की गद्दी पर आंख खोलकर वह शान न देखी, जो दिल्ली दरबार में आपने देखी। आपकी और आपकी लेडी की कुरसी सोने की थी और आपके प्रभु महाराज के छोटे भाई और उनकी पत्नी की चांदीकी। आप दहने थे वह बायें, आप प्रथम थे वह दूसरे। इस देश के सब राजा रईसोंने आपको सलाम पहले किया और बादशाह के भाई को पीछे। जुलूस में आपका हाथी सबसे आगे और सबसे ऊंचा था, हौदा और चंवर छत्र आदि सामान सबसे बढ़-चढकर थे। सारांश यह कि ईश्वर और महाराज एडवर्डके बाद इस देश में आपही का दरजा था। किन्तु अब देखते हैं कि जंगीलाट के मुकाबिले में आपने पटखनी खाई, सिरके बल नीचे आ रहे। आपके स्वदेश में वही ऊंचे माने गये, आपको साफ नीचा देखना पड़ा। पदत्याग की धमकी से भी ऊंचे न हो सके।

आप बहुत धीर गम्भीर प्रसिद्ध थे। उस सारी धीरता गम्भीरता का आपने इस बार कौन्सिल में बे कानूनी कानून पास करते और कनवोकेशन में वक्तृता

देते समय दीवाला निकाल दिया। यह दीवाला तो इस देश में हुआ। उधर विलायत में आपके बार-बार इस्तीफा देने की धमकी ने प्रकाश कर दिया कि जड़ हिल गई है। अन्त में वहां भी आपको दिवालिया होना पड़ा और धीरता गम्भीरता के साथ दृढता को भी जलांजलि देनी पड़ी। इस देश के हाकिम आपकी ताल पर नाचते थे, राजा महाराजा डोरी हिलाने से सामने हाथ बांधे हाजिर होते थे। आपके एक इशारे में प्रलय होती थी। कितने ही राजों को मट्टी के खिलौने की भांति आपने तोड़ फोड़ डाला। कितने ही मट्टी काठ के खिलौने आपकी कृपा के जादू से बड़े-बड़े पदाधिकारी बन गये। आपके एक इशारे में इस देश की शिक्षा पायमाल हो गई, स्वाधीनता उड़ गई। बंगदेश के सिरपर आरा रखा गया। ओह इतने बड़े माई लार्ड का यह दरजा हुआ कि एक फौजी अफसर उनके इच्छित पद पर नियत न हो सका। और उनको इसी गुस्से के मारे इस्तीफा दाखिल करना पड़ा, वह भी मंजूर हो गया। उनका रखाया एक आदमी नौकर न रखा गया, उल्टा उन्हीं के निकल जाने का हुक्म मिला।

जिस प्रकार आपका बहुत ऊंचे चढ़कर गिरना यहां के निवासियों को दु:खित कर रहा है, गिरकर पड़ा रहना उससे भी अधिक दु:खित करता है। आपका पद छूट गया, तथापि आपका पीछा नहीं छूटा है। एक अदना क्लर्क जिसे नौकरी छोड़ने के लिए एक महीने का नोटिस मिल गया हो नोटिस की अवधि को बड़ी घृणा से काटता है। आपको इस समय अपने पद पर रहना कहां तक पसन्द है, यह आपही जानते होंगे। अपनी दशा पर आपको कैसी घृणा आती है, इस बातके जान लेने का इस देशके वासियों को अवसर नहीं मिला। पर पतन के पीछे इतनी उलझनमें पड़ते उन्होंने किसी को नहीं देखा।

माई लार्ड! एक-बार अपने कामों की ओर ध्यान दीजिये। आप किस काम को आये थे और क्या कर चले? शासक का प्रजा के प्रति कुछ तो कर्त्तव्य होता है, यह बात आप निश्चय मानते होंगे। सो कृपा करके बतलाइये क्या कर्त्तव्य आप इस देश की प्रजा के साथ पालन कर चले? क्या आंख बन्द करके मनमाने हुक्म चलाना और किसी की कुछ न सुनने का नाम ही शासन है? क्या प्रजा की बात-पर कभी कान न देना और उसको दबाकर उसकी मर्जी के विरुद्ध जिद्द से सब काम किये चले जाना ही शासन कहलाता है? एक काम हो ऐसा बताइये, जिसमें आपने जिद्द छोड़कर प्रजा की बात पर ध्यान दिया हो। कैसर और जार भी घेरने-घसोटने से प्रजा की बात सुन लेते हैं, पर आप एक मौका तो ऐसा बताइये जिसमें किसी अनुरोध या प्रार्थना सुनने के लिए प्रजा के लोगों को आपने

अपने निकट फटकने दिया हो और उनकी बात सुनी हो। नादिर शाहने जब दिल्ली में कतले आम किया तो आसिफजाह के तलवार गले में डालकर प्रार्थना करने पर उसने कतले आम उसी दम रोक दिया। पर आठ करोड़ प्रजा के गिड़गिड़ाकर बंगविच्छेद न करने की प्रार्थना पर आपने जहा भी ध्यान नहीं दिया। इस समय आपकी शासन अवधि पूरी हो गई है, तथापि बंगविच्छेद किये बिना घर जाना आपको पसन्द नहीं है। नादिरसे भी बढ़कर आपकी जिद् है। क्या आप समझते हैं कि आपकी जिद् से प्रजाके जीमें दु:ख नहीं होता? आप विचारिये तो एक आदमी को आपके कहने पर पद न देने से आप नौकरी छोड़े जाते हैं, इस देश की प्रजा को भी यदि कहीं जाने की जगह होती तो क्या वह नाराज होकर इस देशको छोड़ न जाती?

यहां की प्रजाने आपकी जिद्का फल यहीं देख लिया। उसने देखा लिया कि आपकी जिस जिद्ने इस देश की प्रजा को पीड़ित किया, आपको भी उसने कम पीड़ा न दी, यहां तक कि आप स्वयं उसका शिकार हुए। यहां की प्रजा वह प्रजा है, जो अपने दु:ख और कष्टों की अपेक्षा परिणाम का अधिक ध्यान रखती है। वह जानती है कि संसार में सब चीजों का अन्त है। दु:ख का समय भी एक दिन निकल जावेगा। इसी से सब दु:खों को झेलकर पराधीनता सहकर भी वह जीती है। माई लार्ड! इस कृतज्ञता की भूमिकी महिमा आपने कुछ न समझी और न यहां की दीन प्रजा की श्रद्धा भक्ति अपने साथ ले जा सके, इसका बड़ा दु:ख है।

इस देश के शिक्षितों को तो देखने की आपकी आंखों को ताब नहीं। अनपढ़ गूंगी प्रजा का नाम कभी-कभी आपके मुंहासे निकल जाया करता है। उसी अनपढ़ प्रजा में नर सुलतान नामके एक राजकुमार का गीत गाया जाता है। एक बार अपनी विपद के कई साल सुलतान ने नरवरगढ़ नामके एक स्थान में काटे थे। वहां चौकी दारी से लेकर उसे एक ऊंचे पद तक काम करना पड़ा था। जिस दिन घोड़े पर सवार होकर वह उस नगर से विदा हुआ, नगर द्वार से बाहर आकर उस नगर को जिस रीति से उसने अभिवादन किया था, वह सुनिये। उसने आंखों में आंसू भरकर कहा – 'प्यारे नरवरगढ़। मेरा प्रणाम ले, आज मैं तुझसे जुदा होता हूं। तू मेरा अन्नदाता है। अपनी विपद के दिन मैंने तुझमें काटे हैं, तेरे ऋण का बदला मैं गरीब सिपाही नहीं दे सकता। भाई नरवरगढ़। यदि मैंने जान बूझकर एक दिन भी अपनी सेवा में चूक की हो, यहां की प्रजा की शुभचिन्ता न की हो, यहां की स्त्रियों को माता और बहन की दृष्टि से न देखा हो तो मेरा

प्रणाम न ले, नहीं तो प्रसन्न होकर एक बार मेरा प्रणाम ले और मुझे जाने की आज्ञा दे।'' माई माई लार्ड! जिस प्रजा में ऐसे राजकुमार का गीत गाया जाता है, उसके देश से क्या आप भी चलते समय कुछ सम्भाषण करेंगे? क्या आप कह सकेंगे – 'अभागे। मैंने तुझसे सब प्रकार का लाभ उठाया और तेरी बदौलत वह शान देखी जो इस जीवन में असम्भव है, तूने मेरा कुछ नहीं बिगाड़ा, पर मैंने तेरे बिगाड़ने में कुछ कमी न की। संसार के सबसे पुराने देश। जब तक मेरे हाथ में शक्ति थी, तेरी भलाई की इच्छा मेरे जी में न थी। अब कुछ शक्ति नहीं है, जो तेरे लिए कुछ कर सकूं, पर आशीर्वाद करता हूं कि तू फिर उठे और अपने प्राचीन गौरव और यशको फिर से लाभ करे। मेरे बाद आने वाले तेरे गौरव को समझें।'' आप कर सकते हैं और यह देश आपकी पिछली सब बातें भूल सकता है, पर इतनी उदारता माई लार्ड में कहां?

बंग विच्छेद

गत 16 अक्टूबर को बंग-विच्छेद या बंगाल का पार्टीशन हो गया। पूर्व बंगाल और आसामका नया प्रान्त बनकर हमारे महाप्रभु माई लार्ड इंगलेण्ड के महान राजप्रतिनिधि का तुगलकाबाद आबाद हो गया। भंगड़ लोगों के पिछले रगड़े की भांति यही माई लार्ड की सबसे पिछली प्यारी इच्छा थी। खूब अच्छी तरह भंग घुटकर तैयार हो जाने पर भंगड़ आनन्द से उस पर एक और रगड़ लगाता है। भंगड़-जीवन में उससे बढ़कर और कुछ आनन्द नहीं होता। माई लार्डके भारत शासन जीवन में भी इससे अधिक आनन्द की बात कदाचित् कोई न होगी, जिसे पूरी होते देखने के लिए आप इस देश का सम्बन्ध-जाल छिन्न कर डालने पर भी उससें अटके रहे।

माई लार्ड को इस देश में जो कुछ करना था, वह पूरा कर चुके थे। यहां तक कि अपने सब इरादों को पूरा करते करते अपने शासन काल की इति श्री भी अपने ही कर कमल से कर चुके थे। जो कुछ करना बाकी था, वह यही बंगविच्छेद था। वह भी हो गया। आप अपनी अन्तिम कीर्ति की ध्वजा अपने ही हाथों से उड़ा चले और अपनी आंखों को उसके प्रिय दर्शन से सुखी कर चले, यह बड़े सौभाग्य की बात है। अपने शासन काल की रकाबी में बहुत सी कड़वी कसैली चीजें चख जाने पर भी आप अपने लिये 'मधुरेण समापयेत्' कर चले यही गनीमत है।

अब कुछ करना रह भी गया हो तो उसके पूरा करने की शक्ति माई लार्ड में नहीं है। आपके हाथों से इस देश का जो बुरा भला होना था, वह हो चुका। एक ही तीर आपके तर्कश में और बाकी था, उससे आप बंग भूमि का वक्षस्थल छेद चले। बस, यहां आकर आपकी शक्ति समाप्त हो गई। इस देश की भलाई की ओर तो आपने उस समय भी दृष्टि न की, जब कुछ भला करने की शक्ति आप में थी। पर अब कुछ बुराई करने की शक्ति भी आप में नहीं रही, इससे यहां के लोगों को बहुत ढाढस मिली है। अब आप हमारा कुछ नहीं कर सकते।

आपके शासन काल में बंगविच्छेद इस देश के लिए अन्तिम विषाद और आपके लिए अन्तिम हर्ष है। इस प्रकार के विषाद और हर्ष, इस पृथ्वी के सबसे पुराने देश की प्रजा ने बारम्बार देखे हैं। महाभारत में सबका संहार हो जाने पर भी घायल पड़े हुए दुर्मद दुर्योधन को अश्वत्थामाकी यह वाणी सुनकर अपार हर्ष हुआ था कि मैं पांचों पाण्डवों के सिर काटकर आपके पास लाया हूं। इसी प्रकार सेना सुधार रूपी महाभारत में जंगीलाट किचनर रूपी भीम की विजय-गदा से जर्जरित होकर पदच्युति-हृदमें पड़े इस देशके माई लार्ड को इस खबर ने बड़ा हर्ष पहुंचाया कि अपने हाथों से श्रीमान् को बंगविच्छेद का अवसर मिला। इसी महाहर्ष को लेकर माई लार्ड इस देश से विदा होते हैं, यह बड़े सन्तोष की बात है। अपनों से लड़कर श्रीमान्-की इज्जत गई या श्रीमान्-ही गये, उसका कुछ ख्याल नहीं है, भारतीय प्रजा के सामने आपकी इज्जत बनी रही, यही बड़ी बात है। इसके सहारे स्वदेश तक श्रीमान् मोछों पर ताव देते चले जासकते हैं।

श्रीमान्-के ख्याल के शासक इस देशने कई बार देखे हैं। पांच सौसे अधिक वर्ष हुए तुगलक वंश के एक बादशाह ने दिल्ली को उजाड़ कर दौलता बाद बसाया था। पहले उसने दिल्ली की प्रजा को हुक्म दिया कि दौलता बाद में जाकर बसो। जब प्रजा बड़े कष्टसे दिल्ली को छोड़कर वहां जाकर बसी तो उसे फिर दिल्ली को लौट आने का हुक्म दिया। इस प्रकार दो तीन बार प्रजा को दिल्ली से देवगिरि और देवगिरिसे दिल्ली अर्थात श्रीमान् मुहम्मद तुगलक के दौलताबाद और अपने वतन के बीच में चकराना और तबाह होना पड़ा। हमारे इस समय के माई लार्ड ने केवल इतना ही किया है कि बंगाल के कुछ जिले आसाम में मिलाकर एक नया प्रान्त बना दिया है। कलकत्ते की प्रजा को कलकत्ता छोड़कर चटगांव में आबाद होने का हुक्म तो नहीं दिया। जो प्रजा तुगलक जैसे शासकों का ख्याल बरदाश्त कर गई, वह क्या आजकल के माई लार्ड के एक ख्याल को बरदाश्त नहीं कर सकती है?

सब ज्योंका त्यों है। बंगदेश की भूमि जहां थी वहीं है और उसका हर एक नगर और गांव जहां था वहीं है। कलकत्ता उठाकर चीरापूँजी के पहाड़ पर नहीं रख दिया गया और शिलांग उड़कर हुगली के पुलपर नहीं आ बैठा। पूर्व और पश्चिम बंगाल बीच में कोई नहर नहीं खुद गयी और दोनों को अलग अलग करने के लिये बीच में कोई चीन की सी दीवार नहीं बन गई है। पूर्व बंगाल, पश्चिम बंगाल से अलग हो जाने पर भी अंग्रेजी शासन ही में बना हुआ है और पश्चिम बंगाल भी पहले की भांति उसी शासन में है। किसी बात में कुछ फर्क नहीं पड़ा। खाली ख्याली लड़ाई है। बंगविच्छेद करके माई लार्ड ने अपना एक ख्याल पूरा किया है। इस्तीफा देकर भी एक ख्याल ही पूरा किया और इस्तीफा मंजूर हो जाने पर इस देश में पड़े रहकर भी श्रीमान्-का प्रिन्स आफ वेल्स के स्वागत तक ठहरना एक ख्याल मात्र है।

कितने ही ख्याली इस देश में अपना ख्याल पूरा करके चले गये। दो सवादो सौ साल पहले एक शासक ने इस बंगदेश में एक रुपये के आठ मन धान बिकवाकर कहा था कि जो इससे सस्ता धान इस देश में बिकवाकर इस देशके धनधान्य-पूर्ण होने का परिचय देगा, उसको मैं अपने से अच्छा शासक समझूँगा। वह शासक भी नहीं है, उसका समय भी नहीं है। कई एक शताब्दियों के भीतर इस भूमिने कितने ही रंग पलटे हैं, कितने ही इसकी सीमाएं हो चुकी हैं। कितने ही नगर इसकी राजधानी बनकर उजड़ गये। गौड़ के जिन खण्डहरों में अब उल्लू बोलते और गीदड़ चिल्लाते हैं, वहां कभी बांके महल खड़े थे और वहीं बंगदेश का शासक रहता था। मुर्शिदाबाद जो आज एक लुटा हुआ सा शहर दिखाई देता है, कुछ दिन पहले इसी बंगदेश की राजधानी था और उसकी चहल-पहल का कुछ ठिकाना न था। जहां घसियारे घास खोदा करते थे, वहां आज कलकत्ता जैसा महा नगर बसा हुआ है, जिसके जोड़ का एशिया में एक आध नगर ही निकल सकता है। अब माई लार्ड के बंगविच्छेद से ढाका, शिलांग और चटगांव में से हरेक राजधानी का से हरा बंधवाने के लिये सिर आगे बढ़ाता है। कौन जाने इनमें से किसके नसीब में क्या लिखा है और भविष्य क्या क्या दिखायेगा।

दो हजार वर्ष नहीं हुए इस देश का एक शासक कह गया है -

'सैकड़ों राजा जिसे अपनी-अपनी समझकर चले गये, परन्तु वह किसी के भी साथ नहीं गई, ऐसी पृथ्वी के पाने से क्या राजाओं को अभिमान करना चाहिये? अब तो लोग इसके अंशके अंश को पाकर भी अपने को भूपति मानते हैं। ओहो। जिस पर पश्चाताप करना चाहिये उसके लिये मूर्ख उल्टा आनन्द करते

है।'' वही राजा और कहता है - 'यह पृथ्वी मट्टी का एक छोटा-सा ढेला है, जो चारों तरफ से समुद्ररूपी पानी की रेखा से घिरा हुआ है। राजा लोग आपस में लड़भिड़कर इस छोटे से ढेले के छोटे-छोटे अंशों पर अपना अधिकार जमाकर राज्य करते हैं। ऐसे क्षुद्र और दरिद्री राजाओं को लोग दानी कहकर जांचने जाते हैं। ऐसे नीचों से धनकी आशा करनेवाले अधम पुरुषों को धिक्कार है।'' यह वह शासक था कि इस देश का चक्रवर्ती अधीश्वर होने पर भी एक दिन राज पाट को लात मारकर जंगलों और बनों में चला गया था। आज वही भारत एक ऐसे शासक का शासन काल देख रहा है, जो यहां का अधीश्वर नहीं है, कुछ नियत समय के लिये उसके हाथ में यहां का शासन भार दिया गया था, तो भी इतना मोह में डूबा हुआ है कि स्वयं इस देश को त्यागकर भी इसे कुछ दिन और न त्यागने का लोभ संवरण न कर सका।

यह बंगविच्छेद बंगका विच्छेद नहीं है। बंगनिवासी इससे विच्छिन्न नहीं हुए, वरंच और युक्त हो गये। जिन्होंने गत 16 अक्टोबरका दृश्य देखा है, वह समझ सकते हैं कि बंगदेश या भारतवर्ष में नहीं, पृथ्वी भर में वह अपूर्व दृश्य था। आर्य सन्तान उस दिन अपने प्राचीन वेश में विचरण करती थी। बंगभूमि ऋषि-मुनियों के समय की आर्यभूमि बनी हुई थी। किसी अपूर्व शक्ति ने उसको उस दिन एक राखी से बांध दिया था। बहुत काल के पश्चात भारत सन्तान को होश हुआ कि भारत की मट्टी वन्दना के योग्य है। इसीसे वह एक स्वर से 'बन्दे मातरम्' कहकर चिल्ला उठे। बंगाल के टुकड़े नहीं हुए, वरंच भारत के अन्यान्य टुकड़े भी बंगदेश से आकर चिमटे जाते हैं।

हां, एक बड़ेही पवित्र मेल को हमारे माई लार्ड विच्छिन्न किये जाते हैं। वह इस देश के राजा प्रजा का मेल है। स्वर्गीया विक्टोरिया महारानी के घोषणा पत्र और शासन कालने इस देश की प्रजा के जी में यह बात जमादी थी कि अंग्रेज, प्रजा की बात सुनकर और उसका मन रखकर शासन करना जानते हैं और वह रंग के नहीं, योग्यता के पक्षपाती हैं। केनिंग और रिपन आदि उदार हृदय शासकों ने अपने सुशासन से इस भाव की पुष्टि की थी। इस समय के महाप्रभु ने दिखा दिया कि वह पवित्र घोषणापत्र समय पड़े की चाल मात्र था। अंग्रेज अपने ख्याल के सामने किसी की नहीं सुनते। विशेषकर दुर्बल भारतवासियों की चिल्लाहटका उनके जी में कुछ भी वजन नहीं है। इससे आठ करोड़ बंगालियों के एक स्वर होकर दिन रात महीनों रोने-गाने पर भी अंग्रेजी सरकार ने कुछ न सुना। बंगाल के दो टुकड़े कर डाले। उसी माई लार्ड के हाथ से दो टुकड़े कराये,

जिसके कहने से उसने केवल एक मिलिटरी मेम्बर रखना भी मंजूर नहीं किया और उसके लिये माई लार्ड को नौकरी से अलग करना भी पसन्द किया। भारतवासियों के जी में यह बात जम गई कि अंग्रेजों से भक्तिभाव करना वृथा है, प्रार्थना करना वृथा है और उनके आगे रोना गाना वृथा है। दुर्बल की वह नहीं सुनते।

बंगविच्छेद से हमारे महाप्रभु सरदस्त राजा प्रजा में यही भाव उत्पन्न करा चले हैं। किन्तु हाय। इस समय इस पर महा प्रभु के देश में कोई ध्यान देने वाला तक नहीं है, महाप्रभु तो ध्यान देने के योग्य ही कहां?

लार्ड मिन्टो का स्वागत

भगवान करे श्रीमान् इस विनय से प्रसन्न हों – मैं इस भारत देश की मट्टी से उत्पन्न होने वाला, इसका अन्न फल मूल आदि खाकर प्राण-धारण करने वाला, मिल जाय तो कुछ भोजन करने वाला, नहीं तो उपवास कर जाने वाला, यदि कभी कुछ भंग प्राप्त हो जाय तो उसे पीकर प्रसन्न होने वाला, जवानी बिताकर बुढ़ापे की ओर फुर्ती से कदम बढ़ाने वाला और एक दिन प्राण विसर्जन करके इस मातृभूमि की वन्दनी, मट्टी में मिलकर चिर शान्तिलाभ करने की आशा रखने वाला शिवशम्भु शर्मा इस देश की प्रजा का अभिनन्दन पत्र ले के श्रीमान्-की सेवा में उपस्थित हुआ हूं। इस देश की प्रजा श्रीमान्-का हृदय से स्वागत करती है। आप उसके राजा के प्रतिनिधि होकर आये हैं। पांच साल तक इस देश की 30 करोड़ प्रजा के रक्षण, पालन और शासन का भार राजाने आपको सौंपा। इससे यहां की प्रजा आपको राजा के तुल्य मानकर आपका स्वागत करती है और आपके इस महान् पद पर प्रतिष्ठित होने के लिये हर्ष प्रकाश करती है।

भाग्य से आप इस देश की प्रजा के शासक हुए हैं। अर्थात यहां की प्रजा की इच्छा से आप यहां के शासक नियत नहीं हुए। न यहां की प्रजा उस समय तक आपके विषय में कुछ जानती थी, जबकि उसने श्रीमान्-के इस नियोग की खबर सुनी। किसी को श्रीमान्-की ओर का कुछ भी गुमान न था। आपके नियोग की खबर इस देश में बिना मेघ की वर्षा की भांति अचानक आ गिरी। अब भी यहां की प्रजा श्रीमान्-के विषय में कुछ नहीं समझी है, तथापि उसे आपके नियोग से हर्ष हुआ। आपको पाकर वह वैसी ही प्रसन्न हुई है, जैसे डूबता थाह पाकर प्रसन्न होता है। उसने सोचा है कि आपतक पहुंच जाने से उसकी सब विपदों की इति हो जायेगी।

भाग्यवानों से कुछ न कुछ सम्बन्ध निकाल लेना संसार की चाल है। जो लोग श्रीमान् तक पहुंच सके हैं, उन्होंने श्रीमान्–से भी एक गहरा सम्बन्ध निकाल लिया है। वह लोग कहते हैं कि सौ साल पहले आपके बड़ों में से एक महानुभाव यहां का शासन कर गये हैं, इससे भारत का शासक होना आपके लिये कोई नई बात नहीं है। वह लोग साथ ही यह भी कहते हैं कि सौ साल पहले वाले लार्ड मिन्टो बड़े प्रजापालक थे। प्रजा को प्रसन्न रखकर शासन करना चाहते थे। यह कहकर वह श्रीमान्–से भी अच्छे शासन और प्रजा–रंजनकी आशा जनाते हैं। पर यह सम्बन्ध बहुत दूर का है। सौ साल पहले की बात का कितना प्रभाव हो सकता है, नहीं कहा जा सकता। उस समय की प्रजा में से एक आदमी जीवित नहीं, जो कुछ उस समय की आंखो देखी कह सके। फिर यह भी कुछ निश्चय नहीं कि श्रीमान् अपने उस बड़े के शासन के विषय में वैसा ही विचार रखते हों, जैसा यहा के लोग कहते हैं। यह भी निश्चय नहीं कि श्रीमान्–को सौ साल पहले की शासन नीति पसन्द होगी या नहीं तथा उसका कैसा प्रभाव श्रीमान्–के चित्तपर है। हां, एक प्रभाव देखा कि श्रीमान्–के पूर्ववर्ती शासक ने अपने से सौ साल पहले के शासक की बात स्मरण करके उस समय की पोशाक में गवर्नमेन्ट हौ सके भीतर एक नाच, नाच डाला था।

सारांश यह है कि लोग जिस ढंग से श्रीमान्–की बड़ाई करते हैं वह एक प्रकार की शिष्टाचार की रीति पूरी कर रहे हैं। आपकी असली बड़ाई का मौका अभी नहीं आया, पर वह मौका आपके हाथ में विलक्षण रूप से है। श्रीमान् इस देश में अभी यदि अज्ञातकुल नहीं तो अज्ञातशील अवश्य हैं। यहां के कुछ लोगों की समझ में आपके पूर्ववर्ती शासक ने प्रजा को बहुत सताया है और वह उसके हाथ से बहुत तंग हुई। वह समझते हैं कि आप उन पीड़ाओं को दूरकर देंगे, जो आपका पूर्ववर्ती शासक यहां फैला गया है। इसीसे वह दौड़कर आपके द्वारपर जाते हैं। यह कदापि न समझिये कि आपके किसी गुणपर मोहित होकर जाते हैं। वह जैसे आंखों पर पट्टी बांधे जाते हैं, वैसे ही चले आते हैं, जिस अंधेरे में हैं, उसी में रहते हैं।

अब यह कैसे मालूम हो कि जिन बातों को कष्ट मानते हैं, उन्हें श्रीमान् भी कष्ट ही मानते हों? अथवा आपके पूर्ववर्ती शासक ने जो काम किये, आप भी उन्हें अन्याय भरे काम मानते हों? साथ ही एक और बात है। प्रजा के लोगों की पहुंच श्रीमान् तक बहुत कठिन है। पर आपका पूर्ववर्ती शासक आपसे पहले ही मिल चुका और जो कहना था वह कह गया। कैसे जाना जाय कि आप उसकी बात पर

ध्यान न देकर प्रजा की बात पर ध्यान देंगे? इस देश में पदार्पण करने के बाद जहां आपको जरा भी खड़ा होना पड़ा है, वहीं उन लोगोंसे घिर हुए रहे हैं, जिन्हें आपके पूर्ववर्ती शासक का शासन पसन्द है। उसकी बात बनाई रखने को अपनी इज्जत समझते हैं। अब भी श्रीमान् चारों ओर से उन्हीं लोगों के घेरे में हैं। कुछ करने धरने की बात तो अलग रहे, श्रीमान्–के विचारों को भी इतनी स्वाधीनता नहीं है कि उन लोगों के बिठाये चौकी पहरेको जरा भी उल्लंघन कर सकें। तिसपर गजब यह कि श्रीमान्–को इतनी भी खबर नहीं कि श्रीमान्–की स्वाधीनता पर इतने पहरे बैठे हुए हैं। हां, यह खबर हो जाय तो वह हट सकते हैं।

जिस दिन श्रीमान्–ने इस राजधानीमें पदार्पण करके इसका सौभाग्य बढ़ाया, उस दिन प्रजा के कुछ लोगोंने सड़क के किनारों पर खड़े होकर श्रीमान्–को बड़ी कठिनाई से एक दृष्टि देख पाया। इसके लिये पुलिस पहरे वालों की गली, घुसे और धक्के भी बरदाश्त किये। बस, उन लोगों ने श्रीमान्–के श्रीमुखकी एक झलक देख ली। कुछ कहने सुनने का अवसर उन्हें न मिला, न सहज में मिल सकता। हुजूरने किसी को बुलाकर कुछ पूछताछ न की न सही, उसका कुछ अरमान नहीं, पर जो लोग दौड़कर कुछ कहने सुनने की आशा से हुजूर के द्वार तक गये थे, उन्हें भी उल्टे पांव लौट आना पड़ा। ऐसी आशा अन्तः प्रजा को आपसे न थी। इस समय वह अपनी आशाको खड़ा होने के लिये स्थान नहीं पाते हैं।

एक बार एक छोटा–सा लड़का अपनी सौतेली माता से खाने को रोटी मांग रहा था। सौतेली मां कुछ काम में लगी थी, लड़के के चिल्लाने से तंग होकर उसने उसे एक बहुत ऊंचे ताक में बिठा दिया। बेचारा भूख और रोटी दोनों की भूल नीचे उतार लेने के लिये रो–रो कर प्रार्थना करने लगा, क्योंकि उसे ऊंचे ताकसे गिरकर मरनेका भय हो रहा था। इतने में उस लड़के का पिता आ गया। उसने पिता से बहुत गिड़गिड़ाकर नीचे उतार लेने की प्रार्थना की। पर सौतेली माताने पतिको डांटकर कहा, कि खबरदार! इस शरीर लड़के को वहीं टंगे रहने दो, इसने मुझे बड़ा दिक किया है। इस बालक की सी दशा इस समय इस देश की प्रजा की है। श्रीमान्–से वह इस समय ताक से उतार लेने की प्रार्थना करती है, रोटी नहीं मांगती। जो अत्याचार उस पर श्रीमान्–के पधारने के कुछ दिन पहले से आरम्भ हुआ है, उसे दूर करने के लिये गिड ़गिड़ाती है, रोटी नहीं मांगती। बस, इतने ही में श्रीमान् प्रजा को प्रसन्न कर सकते हैं। सुनाम पाने का यह बहुत ही अच्छा अवसर है, यदि श्रीमान्–को उसकी कुछ परवा हो।

आशा मनुष्य को बहुत लुभाती है, विशेषकर दुर्बल को परम कष्ट देती है। श्रीमान्–ने इस देश में पदार्पण करके बम्बई में कहा और यहां भी एक बार कहा कि अपने शासन काल में श्रीमान् इस देश में सुख शान्ति चाहते हैं। इससे यहां की प्रजा को बड़ी आशा हुई थी कि वह ताक से नीचे उतार ली जायगी, पर श्रीमान्–के दो एक कामों तथा कौंसिलके उत्तरने उस आशा को ढीला कर डाला है, उसे ताक से उतरने का भरोसा भी नहीं रहा।

अभी कुछ दिन हुए आपके एक लफटन्टने कहा था कि मेरी दशा उस आदमी की सी है, जिसके एक हिन्दू और एक मुसलमान दो जोरू हों, हिन्दू जोरू नाराज रहती हो और मुसलमान जोरू प्रसन्न। इससे वह हिन्दू जोरू को हटाकर मुसलमान बीबी से खूब प्रेम करने लगे। श्रीमान्–के उस लफटन्ट की ठीक वैसी दशा है या नहीं, कहा नहीं जा सकता। पर श्रीमान्–की दशा ठीक उस लड़के के पिता की सी है, जिसकी कहानी ऊपर कही गई है। उधर उसका लड़का ताक में बैठा नीचे उतरने के लिये रोता है और इधर उसकी नवीना सुन्दरी स्त्री लड़के को खूब डराने के लिये पतिपर आंखें लाल करती है। प्रजा और 'प्रेस्टीज' दो ख्यालों में श्रीमान फंसे हैं। प्रजा ताकका बालक है और प्रेस्टीज नवीन सुन्दरी पत्नी–किसकी बात रखेंगे? यदि दया और वात्सल्यभाव श्रीमान्–के हृदय में प्रबल हो तो प्रजा की ओर ध्यान होगा, नहीं तो प्रेस्टीज की ओर ढुलकना ही स्वाभाविक है।

अब यह विषय श्रीमान्–ही के विचारने के योग्य है कि प्रजा की ओर देखना कर्त्तव्य है या प्रेस्टीज की। आप प्रजा की रक्षाके लिये आये हैं या प्रेस्टीज की? यदि आपके ख्याल में प्रजारूपी लड़का ताक में बैठा रोया करे और 'उतारो, उतारो' पुकारा करे, इसी में उसका सुख और शान्ति है तो उसे ताक में टंगा रहने दीजिये, जैसा कि इस समय रहने दिया है। यदि उसे वहां से उतारकर कुछ खाने पीने को देने में सुख है तो वैसा किया जा सकता है। यह भी हो सकता है कि उसकी विमाता को प्रसन्न करके उसे उतरवा लिया जाय, इसमें प्रजा और प्रेस्टीज दोनों की रक्षा है।

जो बात आपको भली लगे वही कीजिये–कर्त्तव्य समझिये वही कीजिये। इस देश की प्रजा को अब कुछ कहने सुननेका साहस नहीं रहा। अपने भाग्य का उसे भरोसा नहीं, अपनी प्रार्थना के स्वीकार होने का विश्वास नहीं। उसने अपने को निराशा के हवाले कर दिया है। एक विनय और भी साथ–साथ की जाती है कि इस देश में श्रीमान् जो चाहें बेखटके कर सकते हैं, किसी बात के लिये

विचारने या सोच में जाने की जरूरत नहीं। प्रशंसा करने वाले अब और चलते समय बराबर आपको घेरे रहेंगे। आप देख ही रहे हैं कि कैसे सुन्दर का सकेटों में रखकर, लम्बी चौड़ी प्रशंसा भरे एड्रेस लेकर लोग आपकी सेवामें उपस्थित होते हैं। श्रीमान् उन्हें बुलाते भी नहीं, किसी प्रकार की आशा भी नहीं दिलाते, पर वह आते हैं, इसी प्रकार हुजूर जब इस देश को छोड़ जायेंगे तो हुजूर बालाको बहुत से एड्रेस उन लोगों से मिलेंगे, जिनका हुजूरने कभी कुछ भला नहीं किया। बहुत लोग हुजूर की एक मूर्ति के लिये खनाखन रुपये गिन देंगे, जैसे कि हुजूर के पूर्ववर्ती वयासराय की मूर्ति कि लिये गिने जा रहे हैं। प्रजा उस शासक की कड़ाई के लिये लाख रोती है, पर इसी देश के धन से उसकी मूर्ति बनती है।

विनय हो चुकी, अब भगवान से प्रार्थना है कि श्रीमान्-का प्रताप बढ़े यश बढ़े और जब तक यहां रहें, आनन्द से रहें। यहां की प्रजा के लिये जैसा उचित समझें करें। यद्दपि इस देश के लोगों की प्रार्थना कुछ प्रार्थना नहीं है, पर प्रार्थना की रीति है, इससे की जाती है।

मार्ली साहब के नाम पीछे आगे

'निश्चित विषय।'

विज्ञवरेषु, साधुवरेषु!

बहुत काल पश्चात आपसा पुरुष भाग्य का विधाता हुआ है। एक पंडित, विचारवान और आडम्बर रहित सज्जन को अपना अफसर होते देखकर अपने भाग्य को अचल अटल और कभी टससे मस न होने वाला, वरंच आपके कथनानुसार Settled fact' समझने पर भी आडम्बर शून्य भोले भाले भारतवासी हर्षित हुए थे। वह इसलिये हर्षित नहीं हुए कि आप उनके भाग्य की कुछ मरम्मत कर सकते हैं। ऐसी आशाको वह कभी के जलांजलि, दे चुके हैं। उनका हर्ष केवल इसलिये था कि एक सज्जन को, एक साधुको, यह पद मिलता है। भले का पड़ोस भी भला, उसकी हवा भी भली। 'जो गन्धी कछु दै नहीं, तौहू बास सुबास।'

आप उपाधि शून्य हैं। आपको माई लार्ड कहके सम्बोधन करने की जरूरत नहीं है। अथच आप इस देश के माई लार्ड के भी माई लार्ड हैं। यहां के निवासी सदा से ऋषि मुनियों और साधु महात्माओं को पूजते आये हैं और यहां के देशपति नरपति लोग सदा उन साधु महात्माओं के सामने सिर झुकाते और उनसे अनुशासन पाते रहे हैं। उसी विचार से यहां के लोग आपके नियोग से प्रसन्न हुए थे। एक विचारशील पुरुषका सिद्धान्त है कि किसी देश का उत्तम शासन होने के लिये

दो बातों में से किसी एकका होना अति आवश्यक है –या तो शासक साधु बन जाय या साधु शासक नियत किया जाय। हाकिम हकीम हो जाय या हकीम हाकिम बनाया जाय। इसी से आपको भारत का देशमन्त्री देखकर यहां की प्रजा को हर्ष हुआ था कि अहा! बहुत दिन पीछे एक साधु पुरुष – एक विद्वान सज्जन भारत का सर्व प्रधान शासक होता है।

भारतवासी समझते थे कि मिस्टर मार्ली विद्वान हैं। विद्या पढ़ने और दर्शन–शास्त्र का मनन करने में समय बिताकर वह बूढ़े हुए हैं। वह तत्काल जान सकते हैं कि बुराई क्या है और भलाई क्या, नेकी क्या है और बदी क्या? उनको बुराई और भलाई के समझने में दूसरे की सहायता की आवश्यकता नहीं। वरंच वह स्वयं इतने योग्य हैं कि अपनी ही बुद्धि से ऐसी बातों की यथार्थ जांच कर सकते हैं। दूसरों के चरित्र को झट जान सकते हैं। वह दोषी को धमकायेंगे और उसे सुमार्गमें चलानेका उपदेश देंगे। भारतवासियों का विचार था कि आप बड़े न्यायप्रिय हैं। किसी से जरा भी किसी विषयमें अन्याय करना पसन्द न करेंगे और खुशी को ने की से बढ़कर न समझेंगे। उचित कामों के करने में कभी कदम पीछे न हटावेंगे और कोई लालच, कोई इनाम और कोई भारी से भारी पद वा राजनीतिक दांव पेच आपको सत्य और सन्मार्गसे न डिगा सकेगा। आपके मुंह से जो शब्द निकलेंगे, वह तुले हुए सत्य होंगे। यही कारण है कि भारतवासी आपके नियोग की खबर सुनकर खुश हुए थे।

पार्लीमेंटके चुनाव के समय जिस प्रकार भारतवासी आपके चुनाव की ओर टकटकी लगाये हुए थे, आपके भारत सचिव हो जाने पर उसी प्रकार वह आपके मुंह की वाणी सुनने को उत्सुक हुए। पर आपके मुंह से जो कुछ सुना उसे सुनकर वह लोग जैसे हक्का बक्का हुए ऐसे कभी न हुए थे। आपने कहा कि बंग भंग होना बहुत खराब काम है, क्योंकि यह अधिकांश प्रजावर्ग की इच्छा के विरुद्ध हुआ। पर जो हो गया उसे Settled fact, निश्चित विषय समझना चाहिए। एक विद्वान पुरुष दार्शनिक सज्जन की यह उक्ति कि यह काम यद्यपि खराब हुआ, तथापि अब यही अटल रहेगा। इसकी खराबी अब दूर न होगी। किमाश्चर्यमतः परम।

लड़कपन में एक देहाती की कहानी पढ़ी थी जिसका गधा खोया गया था और वह एक दूसरे की गधी को अपना गधा बताकर पकड़ ले जाना चाहता था। पर जब उसे लोगों ने कहा कि यार! तू तो अपना गधा बताता है, देख यह गधी

है, तो उसने घबराकर कहा था कि मेरा गधा कुछ ऐसा गधा भी न था। गंवारका गधा–गधी हो सकता है, पर भारत सचिव दार्शनिक प्रवर मार्ली साहब जिस काम को बुरा बताते हैं, वही 'निश्चित विषय' भी हो सकता है, यह बात भारतवासियों ने कभी स्वप्न में भी नहीं विचारी थी। जिस काम को आप खराब बताते हैं, उसे वैसे का वैसा बना रखना चाहते हैं, यह नये तरीके का न्याय है। अब तक लोग यही समझते थे कि विचारवान विवेकी पुरुष जहां जायेंगे वहीं विचार और विवेकी मर्यादा की रक्षा करेंगे। वह यदि राजनीति में हाथ डालेंगे तो उसकी जटिलता को भी दूर कर देंगे। पर बात उल्टी देखने में आती है। राजनीति बड़े-बड़े सत्यवादी साहसी विद्वानों को भी गधा गधी एक बतलाने वालों के बराबर कर देती है।

विज्ञवर! आप समझते हैं और आप जैसे विद्वानों को समझना चाहिये कि सत्य,सत्य है और मिथ्या, मिथ्या। मिथ्या और सत्य गड़प शड़प हो कर एक हो सकते हैं, यह आप जैसे साधु पुरुषों के कहने की बात नहीं है। विज्ञ पुरुषों के कहने की बात नहीं है। विज्ञ पुरुषों की बातों को आपस में टकराना न चाहिये। पर गत बजट की स्पीच में आपने बातों के मेढ़े लड़ा डाले हैं। आपने कहा है – ''जहां तक मेरी कल्पना जा सकती है, भारत शासन यथेच्छ ढंग का रहेगा।'' पर यह भी कहा है – ''भारत में किसी प्रकार की बुरी चाल चलना हमें उससे भी अधिक खराबीमें डालेगा, जितना दक्षिण अफ्रीका में चार साल पहले एक बुरी चाल चलकर खराबी में पड़ चुके है।'

आपने कहा है – ''हिन्दुस्तानी कांग्रेस की कामनाओं को सुनकर मैं घबराता नहीं।'' पर यह भी कहा – 'जो बातें विलायत को प्राप्त हैं, वह भारत को सब नहीं प्राप्त हो सकतीं।'' आपकी इन दोरंगी बातों से भारतवासी बड़े घबराहट में पड़े हैं। घबराकर उन्हें आपके देश की दो कहावतों का आश्रय लेना पड़ता है कि – राजनीतिज्ञ पुरुष युक्ति या न्याय के पाबन्द नहीं होते अथवा राजनीति का कुछ ठिकाना नहीं।

आपको अपने ही एक वाक्य की ओर ध्यान देना चाहिये – ''अपनी साधारण योग्यता के परिणाम से ही कोई आदमी प्रसिद्ध या बड़ा नहीं हो सकता। वरंच उचित समय पर उचित काम करना ही उसे बड़ा बनाता है।'' जिस पद पर आप हैं – उसकी जो कुछ इज्जत है, वह आपकी नहीं, उस पदकी है। लार्ड जार्ज हमिल्टन और मिस्टर ब्राडरिक भी इसी पद पर थे। पर इस पदसे उनकी इतनी ही इज्जत थी कि वह इस पद पर थे। बाकी उनके कामों के अनुसार ही

उनकी इज्जत है। आपका गौरव इस पदसे नहीं बढ़ना चाहिए। वरंच आपके कामों से इस पद की कुछ मर्यादा बढ़नी चाहिये।

भारतवासियों ने बहुत कुछ देखा और देख रहे हैं। इस देश के ऋषि-मुनि जब बनों में जाकर तप करते थे और यहां के नरेश उनकी आज्ञा से प्रजापालन करते थे, वह समय भी देखा। फिर मुसलमान इस देश के राजा हुए और पुराना क्रम मिट गया, वह भी देखा। अब देख रहे हैं, सात समुद्र पार से आई हुई एक जाति के लोग जो पहले बिसाती के रूप में इस देश में आये थे और छल बल और कौशल से यहां के प्रभु बन गये। यह देश और यहां की स्वाधीनता उनकी मुठ्ठी की चिड़िया बन गई। और भी न जाने क्या क्या देखना पड़ेगा। पर संसार की कोई बात निश्चित है, यह बात यहां के लोगों की समझ में नहीं आती। निश्चित ही होती तो लार्ड जार्ज हमिल्टन और ब्राडरिक की गद्दी साधुवर मार्ली तक कैसे पहुंचती।

न बंग-भंग ही निश्चित विषय है और न भारत का यथेच्छ शासन। स्थिरता न प्रभात को है और न सन्ध्या को। सदा न वसन्त रहता है, न ग्रीष्म। हां, एक बात अब भारतवासियों के जी में भली-भांति पक्की होती जाती है कि उनका भला न कन्सरवेटिव ही कर सकते हैं और न लिबरल ही। यदि उनका कुछ भला होना है तो उन्हीं के हाथ से। इसे यदि विज्ञवर मार्ली 'निश्चित-विषय' मान लें तो विशेष हानि नहीं।

अत: भारतवासियों का भला या बुरा जो होना है सो होगा, इसकी उन्हें कुछ परवा नहीं है। उन्हें ईश्वर पर विश्वास है और काल अनन्त है, कभी न कभी भलेका भी समय आ जायेगा। भारतवासियों को चिन्ता केवल यही है कि उनके देशसचिव साधुवर मार्ली साहब को अपनी चिरकाल से एकत्र की हुई कीर्ति और सुयशको अपने वर्तमान पदपर कुरबान न करना पड़े। इस देश का एक बहुत ही साधारण कवि कहता है -

झूठा है वह हकीम जो लालच से माल के,
अच्छा कहे मरीज के हाले तबाह को।

अपने लालचके लिये यदि रोगी की बुरी दशा को अच्छा बतावे तो वह हकीम नहीं कहला सकता। भारतवासी आपको दार्शनिक और हकीम समझते हैं। उनको कभी यह विश्वास नहीं कि आप अपने पद के लोभ से न्याय-नीति की मर्यादा भंग कर सकते हैं या अपने दलकी बुराई भलाई और कमजोरी मजबूती के ख्यालसे भारत के शासन रूपी रोगी की बिगड़ी दशा को अच्छी बता सकते

हैं। आप ही के देश का एक साधु पुरुष कह गया है – 'आयरलेंड की स्वाधीनता मेरे जीवन का व्रत है, पर इस स्वाधीनता पाने के लोभ से भी मैं दक्षिण अफ्रीका वालों की स्वाधीनता छिनवाने का समर्थन कभी न करूंगा, अत: आपसे बार-बार यही विनय है कि अपने साधु पदकी मर्यादाका खूब विचार रखिये। भारतवासियों को अपनी दशा की परवा नहीं। पर आपकी इज्जत का उन्हें बड़ा ख्याल है। कहीं आप राजनीतिक पद के लोभ से अपने साधु पद को उस देहाती का गधा न बना बैठें।

अपने सिर का तो हमें कुछ गम नहीं,
खम न पड़ जाये तेरी तलवार में।

आशीर्वाद

तीसरे पहर का समय था। दिन जल्दी-जल्दी ढल रहा था और सामने से संध्या फुर्ती के साथ पांव बढ़ाये चली आती थी। शर्मा महाराज बूटी की धुन में लगे हुए थे। सिल-बट्टे से भंग रगड़ी जांही थी। मिर्च मसाला साफ हो रहा था। बादाम इलायची के छिलके उतारे जाते थे। नागपुरी नारंगियां छील कर रस निकाला जाता था। इतने में देखा कि बादल उमड़ रहे हैं। चीलें नीचे उतर रही हैं, तबीयत भुरभुरा उठी इधर भंग उधर घटा, बहार में बहार। इतने में वायु का बेग बढ़ा, चीलें अदृश्य हुई। अन्धेरा छाया। बून्दें गिरने लगीं। साथ ही तड़-तड़ धड़-धड़ होने लगी, देखा ओले गिर रहे हैं। ओले थमे, कुछ वर्षा हुई। बूटी तैयार हुई 'बम भोला' कह के शर्मा जी ने एक लोटा भर चढ़ाई। ठीक उसी समय लाल डिग्गी पर बड़े लाट मिन्टो ने बंगदेश के भूतपूर्व छोटे लाट उडबर्न की मूर्ति खोली। ठीक एक ही समय कलकत्ते में यह दो आवश्यक काम हुए। भेद इतना ही था कि शिवशम्भु शर्मा के बरामदे की छत पर बून्दें गिरती थीं और लार्ड मिन्टो के सिर या छाते पर।

भंग छानकर महाराज जी ने खटिया पर लम्बी तानी। कुछ काल सुषुप्ति के आनन्द में निमग्न रहे। अचानक धड-धड़ तड़-तड़ के शब्द ने कानों में प्रवेश किया। आंखें मलते उठे। वायुके झोंकों से किवाड़ पुर्जे-पुर्जे हुआ चाहते थे। बरामदे के टीनों पर तड़ातड़ के साथ ठनाका भी होता था। एक दरवाजे के किवाड़ खोलकर बाहर की ओर झांका तो हवा के झोंके ने दस बीस बून्दों और दो चार ओलों से शर्मा जी के श्रीमुख का अभिषेक किया। कमरे के भीतर भी ओलों की एक बौछाड़ पहुंची। फुर्तीसे किवाड़ बन्द किये, तथापि एक शीशा चूर

हुआ। समझ में आगया कि ओलों की बौछाड़ चल रही है। इतने में ठन-ठन करके दस बजे। शर्मा जी फिर चारपाई पर लम्बायमान हुए। कान, टीन और ओलों के सम्मिलन की ठनाठन का मधुर शब्द सुनने लगे। आंखें बन्द, हाथ पांव सुख में। पर विचार के घोड़े को विश्राम न था। वह ओलों की चोट से बाजुओं को बचाता हुआ परिन्दों की तरह इधर-उधर उड़ रहा था। गुलाबी नशे में विचारों का तार बंधा कि बड़े लाट फुर्ती से अपनी कोठी में घुस गये होंगे और दूसरे अमीर भी अपने-अपने घरों में चले गये होंगे, पर वह चीलें कहां गई होंगी? ओलों से उनके बाजू कैसे बचे होंगे, जो पक्षी इस समय अपने अण्डे बच्चों समेत पेड़ों पर पत्तों की आड़ में हैं या घोसलों में छिपे हुए हैं, उन पर क्या गुजरी होगी। जरूर झड़े हुए फलों के ढेर में कल सवेरे इन बदनसीबों के टूटे अण्डे, मरे बच्चे और इनके भीगे सिसकते शरीर पड़े मिलेंगे। हां, शिवशम्भु को इन पक्षियों की चिन्ता है, पर यह नहीं जानता कि इस अभ्रस्पर्शी अट्टालिकाओं से परपूरित महानगर में सह स्त्रों अभागे रात बिताने को झोंपड़ी भी नहीं रखते। इस समय सैंकड़ों अट्टालिकाएं शून्य पड़ी हैं। उनमें सहस्त्रों मनुष्य सो सकते, पर उनके ताले लगे हैं और सहस्त्रों में केवल दो दो चार चार आदमी रहते हैं। अहो, तिस पर भी इस देश की मट्टी से बने हुए सहस्त्रों अभागे सड़कों के किनारे इधर-उधर की सड़ी और गीली भूमियों में पड़े भीगते हैं। मैले चिथड़े लपेटे वायु वर्षा और ओलोंका सामना करते हैं। सवेरे इनमेंसे कितनों ही की लाशें जहां-तहां पड़ी मिलेंगी। तू इस चारपाई पर मजें उड़ा रहा है।

आन की आन में विचार बदला, नशा उड़ा, हृदय पर दुर्बलता आई। भारत! तेरी वर्तमान दशा में हर्ष को अधिक देर स्थिरता कहां? कभी कोई हर्षसूचक बात दस-बीस पलक के लिये चित्त को प्रसन्न कर जाये तो वही बहुत समझना चाहिये। प्यारी भंग! तेरी कृपा से कभी-कभी कुछ काल के लिये चिन्ता दूर हो जाती है। इसी से तेरा सहयोग अच्छा समझा है। नहीं तो यह अधबूढ़ा भंगड़ क्या सुख का भूखा है! घावों से चूर जैसे नींद में पड़कर अपने कष्ट भूल जाता है अथवा स्वप्न में अपने को स्वस्थ देखता है, तुझे पीकर शिवशम्भु भी उसी प्रकार कभी-कभी अपने कष्टों को भूल जाता है।

चिन्ता स्रोत दूसरी ओर फिरा। विचार आया कि काल अनन्त है। जो बात इस समय है, वह सदा न रहेगी। इससे एक समय अच्छा भी आ सकता है। जो बात आज आठ-आठ आंसू रुलाती है, वही किसी दिन बड़ा आनन्द उत्पन्न कर सकती है। एक दिन ऐसीही काली रात थी। इससे भी घोर अंधेरी-भादों कृष्णा

अष्टमी की अर्द्धरात्रि। चारों ओर घोर अन्धकार–वर्षा होती थी, बिजली कौधती थी, घन गरजते थे। यमुना उत्ताल तरंगों में बह रही थी। ऐसे समय में एक दृढ़ पुरुष एक सद्यजात शिशु को गोद में लिये, मथुरा के कारागार से निकल रहा था। शिशु की माता शिशु के उत्पन्न होन के हर्ष को भूलकर दु:ख से विह्वल होकर चुपके–चुपके आंसू गिराती थी, पुकार कर रो भी नहीं सकती थी। बालक उसने उस पुरुष को अर्पण किया और कलेजेपर हाथ रख कर बैठ गई। सुध आने के समय से उसने कारागार में ही आयु बिताई है। उसके कितने ही बालक वहीं उत्पन्न हुए और वहीं उसकी आंखों के सामने मारे गये। यह अन्तिम बालक है। कड़ा कारागार, विकट पहरा, पर इस बालक को वह किसी प्रकार बचाना चाहती है। इसी से उस बालक को उसने पिता की गोद में दिया हैं कि वह उसे किसी निरापद स्थान में पहुंचा आवे।

वह और कोई नहीं थे, यदुवंशी महाराज वासुदेव थे और नवजात शिशु कृष्ण। उसी को उस कठिन दशा में उस भयानक काली रात में वह गोकुल पहुंचाने जाते हैं। कैसा कठिन समय था। पर दृढ़ता सब विपदों को जीत लेती है, सब कठिनाइयों को सुगम कर देती है। वासुदेव सब कष्टों को सह कर यमुना पार करके भीगते हुए उस बालक को गोकुल पहुंचा कर उसी रात कारागार में लौट आये। वही बालक आगे कृष्ण हुआ, ब्रज का प्यारा हुआ, मां–बाप की आंखों का तारा हुआ, यदुकुल मुकुट हुआ। उस समय की राजनीति का अधिष्ठाता हुआ। जिधर वह हुआ उधर विजय हुई, जिसके विरुद्ध हुआ उसकी पराजय हुई। वही हिन्दुओं का सर्वप्रधान अवतार हुआ और शिवशम्भु शर्मा का इष्टदेव, स्वामी और सर्वस्व। वह कारागार भारत सन्तान के लिये तीर्थ हुआ। वहां की धूल मस्तक पर चढ़ाने के योग्य हुई –

बर जमीने कि निशानेकफे पाये तो वुवद।
सालहा सिजदये साहिब नजरां ख्वाहद बूद॥

(जिस भूमि पर तेरा पदचिह्न है, दृष्टिवाले सैकड़ों वर्ष तक उस पर अपना मस्तक टेकेंगे।)

तब तो जेल बुरी जगह नहीं है। 'पजाबी' के स्वामी और सम्पादक को जेल के लिये दु:ख न करना चाहिये। जेल में कृष्ण ने जन्म लिया है। इस देश के सब कष्टों से मुक्त करने वाले ने अपने पवित्र शरीर को पहले जेल की मिट्टी से स्पर्श कराया। उसी प्रकार 'पजाबी' के स्वामी लाला यशवन्त राय ने जेल में जाकर जेल की प्रतिष्ठा बढ़ाई, भारतवासियों का सिर ऊंचा

किया, अग्रवाल जाति का सिर ऊंचा किया। उतना ही ऊंचा, जितना कभी स्वाधीनता और स्वराज्य के समय अग्रवाल जाति का अग्रोहे में था। उधर एडीटर मि. अथाव लेने स्थानीय ब्राह्मणों का मस्तक ऊंचा किया, जो उनके गुरु तिलक को अपने मस्तक का तिलक समझते हैं। सुरेन्द्रनाथ ने बंगाल की जेल की और तिलकने बम्बई की जेल का मान बढ़ाया था। यशवन्त राय और अथाव लेने लाहोर की जेल को वही पद प्रदान किया। लाहोरी जेल की भूमि पवित्र हुई। उसकी धूल देश के शुभचिन्तकों की आंखों का अजन हुई। जिन्हें इस देशपर प्रेम है, वह इन दो युवकों की स्वाधीनता और साधुता पर अभिमान कर सकते हैं।

जो जेल, चोर डकैतों, दुष्ट हत्यारों के लिये है जब उसमें सज्जन, साधु, शिक्षित, स्वदेश और स्वजाति के शुभचिन्तकों के चरण स्पर्श हों तो समझना चाहिये कि उस स्थान के दिन फिरे। ईश्वर की उस पर दया दृष्टि हुई। साधुओं पर संकट पड़ने से शुभ दिन आते हैं। इससे सब भारतवासी शोक सन्ताप भूलकर प्रार्थना के लिये हाथ उठावें कि शीघ्र वह दिन आवे कि जब एक भी भारतवासी चोरी, डकैती, दुष्टता, व्याभिचार, हत्या, लूट-खसोट, जाल आदि दोषों के लिये जेल में न जाये। जाये तो देश और जाति की प्रीति और शुभचिन्ता के लिये। दीनों और पददलित निर्बलों को सबलों के अत्याचार से बचाने के लिये, हाकिमों को उनकी भूलों और हार्दिक दुर्बलता से सावधान करने के लिये और सरकार को सुमन्त्रणा देने के लिये। यदि हमारे राजा और शासक हमारे सत्य और स्पष्ट भाषण और हृदयकी स्वच्छता को भी दोष समझें और हमें उसके लिये जेल भेजें तो वैसी जेल हमें ईश्वर की कृपा समझकर स्वीकार करना चाहिये और जिन हथकड़ियों हमारे निर्दोष देश बांधवों के हाथ बंधें, उन्हें हेममय आभूषण समझना चाहिये। इसी प्रकार यदि हमारे ईश्वर में इतनी शक्ति हो कि वह हमारे राजा और शासकों को हमारे अनुकूल कर सके और उन्हें उदारचित्त और न्यायप्रिय बना सके तो इतना अवश्य करे कि हमें सब प्रकार के दोषों से बचाकर न्याय के लिये जेल काटने की शक्ति दे, जिससे हम समझें कि भारत हमारा है और हम भारत के। इस देश के सिवा हमारा कहीं ठिकाना नहीं। रहें इसी देश में, चाहे जेल में चाहे घर में। जब तक जियें जियें और जब प्राण निकल जायं तो यहींकी पवित्र मट्टी में मिल जाये।

शाइस्ताखां का खत – 1

फुलर साहब के नाम

भाई फुलरजंग! दो सौ, सवा दो सौ साल के बाद तुमने फिर एक बार नवाबी जमाने को ताजा किया है, इसके लिये मैं तुम्हारा शुक्रिया किस जुबानसे अदा करूं। मैंने तो समझा था कि हम लोगों की बदनाम नवाबी हुकूमत की दुनिया में फिर कभी इज्जत न होगी। उस पर अमलदरामद तो क्या उसका नाम भी अगर कोई लेगा तो गाली देने के लिये। मेरा ही नहीं, मेरे बाद भी जो नवाब हुए उन सबका यही ख्याल है। मगर अब देखता हूं कि जमाने का इंकलाब एक बार फिर से हम लोगों के कारनामों को ताजा करना चाहता है।

अपनी हुकूमत के जमाने में मैंने कितने ही काम अपनी मर्जी से किये और कितने ही लाचारी से। उनमेंसे कितनों ही के लिये मैं निहायत शर्मिन्दा हूं, अपने ऊपर मुझे आप नफरत आती है। मैंने देखा कि उन कामों का नतीजा बहुत खराब हुआ। हुकूमत के नशे में उस वक्त बुरा भला कुछ न सोचा। मगर अंजाम जो कुछ हुआ, वह सारे जमानेने देख लिया। यानि हमारी कौम को बहुत जल्द हुकूमत से छुट्टी मिल गई और जिस बादशाह का मैं नायब बनकर बंगाल का नाजिम हुआ था, उसने मरने से पहले अपनी हुकूमत का जवाल अपनी आंखों से देखा। बंगाल में मेरे बाद फिर किसी को नाजिम नहीं होना पड़ा।

गर्जे के मैंने खूब गौर करके देखा बंगाले में या हिन्दुस्तान में नवाबी जमाना फिर होने की कुछ जरूरत नहीं है। इन दो सौ साल में कितनी ही बातें मैंने जान ली हैं, जमाने के कितने ही उल्ट-पलट देखे और समझे उसकी चाल पर खूब निगाह जमाकर देखा, मगर कहीं नवाबी के खड़ा होने की गुंजाइश न पाई। लेकिन देखा जाता है कि तुम्हारे जी में नवाबी की ख्वाहिश है। तुम बंगाल के हिन्दुओं को धमकाते हो कि उनके लिये फिर शाइस्ताखां का जमाना ला दिया जायगा। भई वल्लह। मैंने जब से यह खबर अपने दोस्त नवाब अब्दुल्लतीफखांसे सुनी है तबसे हंसते-हंसते मेरे पेट में बल पड़ जाते हैं। अकेला मैं ही नहीं हंसा, बल्कि जितने मुझसे पहले और पीछे के नवाब यहां बहिश्त में मौजूद हैं सब एक बार हंसे। यहां तक कि हमारे सिका सूरत बादशाह औरंगजेब भी जो उस दुनिया में कभी न हंसे थे इस वक्त अपनी हंसीको रोक न सके। हंसी इस बात की थी कि बे समझे ही तुमने मेरे जमानेका नाम लिया है। मालूम होता है कि तुम्हें इल्म तवारीख से बहुत कम मस है। अगर तुम्हें मालूम होता कि मेरा जमाना बंगालियों के बनिस्पत तुम फिरंगियोंके लिये ज्यादा मुसीबत का था, तो शायद उसका नाम भी न लेते। तुमको मालूम होना चाहिये कि यहां बहिश्त में भी

अंग्रेजी अखबार पढ़े जाते हैं। मेरे जमाने में तो तुम लोगों की गिटपिट बोली को ख्यालही में कौन लाता था, पर मैंने मालूम किया है कि मेरे बाद भी उसकी कुछ कदर न थी। यहां तक कि गदर के जमाने में दिल्ली के मुसलमान तुम्हारी बोली को गुड डामियर बोली कहा करते थे। मगर इस वक्त यहां भी तुम्हारी बोली की जरूरत पड़ती है क्योंकि अब वह कुल हिन्दुस्तान में छाई हुई है और हिन्दुस्तान की खबरों को जानने का यहां वालों को भी शौक रहता है। इसी से अंग्रेजी अखबारों की जरूरी खबरें यहां वाले भी नवाब अब्दुल्लतीफखां वगैरह से सुन लिया करते हैं।

भाई नवाब फुलर! मैं सच कहता हूं कि मेरा जमाना बुलाना तुम कभी पसन्द न करोगे। मुझे ताज्जुब है कि किसी अंग्रेज ने तुम्हारे ऐसा कहने पर तुम्हें गंवार नहीं कहा। उस वक्त तुम लोग क्या थे, जरा सुन डालो। तुम कई तरह के फरंगी इस मुल्क में अपने जहाजों में बैठकर आने लगे थे। बंगाल में वलन्देज, पुर्तगीज, फ्रांसीसी और तुम लोगों ने कई मुकामों में अपनी कोठियां बनाई थीं और तिजारत के बहाने कितनी ही तरह की शरारतें सोचा और किया करते थे। वह फरंगी चोरियां करते थे, डाके डालते थे, गांव जलाते थे। जब हमलोगों को यह मालूम हुआ कि तुम्हारी नीयत साफ नहीं है, तिजारत के बहाने से तुम इस मुल्क पर दखल कर बैठने की फिक्र में हो, तब तुमलोगों को यहां से मार के भगाना पड़ा और सिर्फ बंगाल ही से नहीं, सारे हिन्दुस्तान से निकालने का भी हमारे बादशाह ने बन्दोबस्त किया था। जुल्म से यह सुलूक तुम्हारे साथ नहीं किया गया। इसके बाद 50 साल तक तुम अपने पांव से खड़े न हो सके।

यह कायदा है कि दूसरी कौम की हुकूमतही को लोग जुल्म से भी बढ़कर जुल्म समझते हैं। इससे हिन्दू हमारी हुकूमत को उस जमाने में बुरा समझते हों तो एक मामूली बात है। तो भी मैं तुम्हारे जानने को कहता हूं, कि हम मुसलमानों ने बहुत दफे हिन्दुओं के साथ इंसानियत का बर्ताव भी किया है। बहुत-सी बदनामियों के साथ मेरी हुकूमत के वक्त की एक नेकनामी बंगाले की तवारीख में ऐसी मौजूद है, जिसकी नजीर तुम्हारी तवारीख में कहीं भी न मिलेगी। मैंने बंगाले के दारुस्सल्तनत ढाके में एक रुपये के 8 मन चावल बिकवाये थे। क्या तुममें वह जमाना फिर ला देने की ताकत हैं? मैं समझता हूं कि अंग्रेजी हुकूमत में यह बात नामुमकिन है। अंग्रेजी में ऐसा न हुआ, न है और न हो सकता है। जहां तुम्हारी हुकूमत जाती हैं, वहीं खाने-पीने की चीजों को एकदम आग लग जाती है। क्योंकि तुम तो हम लोगों की तरह खाली हाकिम ही नहीं हो,

साथ-साथ बक्काल भी हो। उस अपने बक्कालपन की हिमायत के लिये ही हमारे जमाने को बंगाल में खेंचकर लाना चाहते हो। जो बादशाह भी है और बक्काल भी है, उसकी हुकूमत में खाने-पीने की चीजें सस्ती कैसे हों?

मेरी हुकूमत का एक सबसे बड़ा इल्जाम मैं खुद बताता हूँ। अपने बादशाह के हुक्म से मैंने बंगाल के हिन्दुओं पर जिजिया लगाया था। पर वह तुम फरंगियों पर भी लगाया था। तुम लोग चालाक थे, कुछ घोड़े और तोहफा तहायफ देकर बच गये। हिन्दुओं के साथ झगड़ा हुआ। उनके दो चार मन्दिर टूटे और एक इज्जतदार रईस कैद हुआ। इसी के लिये मैं शर्मिन्दा हूं और इसका बदला भी हाथों पाया और इसी का खौफ तुम अपने इलाके के हिन्दुओं को दिलाते हो। वरना यह हिम्मत तो तुममें कहां कि मेरे जमाने की तरह हिन्दुओं को हर बार हथियार बांधने दो और आठ मनका गल्ला खाने दो।

तुम लोगों ने जो महसूल इस मुल्क पर लगाये हैं, वह क्या कभी इस मुल्क की खाने-पीने की चीजों को सस्ता होने देंगे? तुम्हारा नमक का महसूल जिजिये से किस बातमें कम हैं? भाई फुलर जंग। कितने ही इल्जाम चाहे मुझ पर हों, एक बार मैंने इस मुल्क की रैयत को जरूर खुश किया था। मगर तुमने हुकूमत की बाग हाथ में लेते ही गुरखों को अपने वहदे पर मुकर्रर किया है। बच्चों के मुंह से 'बन्दये मातरम्' सुन कर तुम जामे से बाहर होते हो, इतने पर भी तुम मेरी या किसी दूसरे नवाब की हुकूमत से अपनी हुकूमत को अच्छा समझते हो। तुम्हें आफरीं है!

तुमने बिगड़ कर कहा है कि तुम बंगालियों को पांच सौ साल पीछे फेंक दोगे। अगर ऐसा हो, तो भी बंगाली बुरे न रहेंगे, उस वक्त बंगाल में एक ऐसे राजा का राज था, जिसने हिन्दुओं के लिये मन्दिर और मुसलमानों के लिये मस्जिदें बनवाई थीं और उस राजा के मर जाने पर हिन्दू उसकी लाश को जलाना और मुसलमान गाड़ना चाहते थे। वह जमाना तुम्हारे जैसा हाकिम क्यों आने देगा? तुम तो हिन्दू मुसलमानों को लड़ा कर हुकूमत करने की बहादुरी समझते हो और इस वक्त मुसलमानों के साथ बड़ी मुहब्बत जाहिर कर रहे हो। मगर तुम लोगों की मुहब्बत कलकत्ते में उस लाठ के बनाने से ही समझदार मुसलमान समझ गये, जो तुम्हारा एक चलता अफसर सिराजुद्दौला का मुंह काला करने के लिये एक कयासी वकूए की यादगारी के तौर पर बना गया है। मुसलमानों से तुम्हारी जैसी मुहब्बत है, उसे वह लाठ पुकार पुकार कर कह रही है।

आखिर में मैं तुमको एक दोस्ताना सलाह देता हूं कि खबरदार कभी पुराने जमानेको फिर लाने की कोशिश न करना। तुम लोगों को मैं सदा कमीने, झगड़ालू लोग और बेईमान बक्काल कहा करता। मेरे बाद भी तुम्हारे कर्मों से इस मुल्क के लोगों को कभी मुहब्बत नहीं हुई। यहां तक कि खुदाने तुम्हें इस मुल्क का मालिक कर दिया तो भी लोगों का एतबार तुम पर न हुआ। हां, एक तुम्हारी जन्नतम कानी मलिका विक्टोरिया का जमाना ही ऐसा हुआ, जिसमें इस मुल्क के लोगों ने तुम लोगों की हुकूमत की इज्जत की। क्योंकि उस मलिका मुअज्जमाने अदल से इस मुल्क के लोगों का दिल अपने हाथ में लिया। मैं नहीं चाहता कि तुम उस हासिल की हुई इज्जत को खोओ। रैयत के दिल में इन्साफ का सिक्का बैठता है, जुल्म का नहीं। जुल्म के लिये हम लोग बदनाम हो चुके, तुम क्यों बदनाम होते हो? जुल्म का नतीजा हम भोग चुके हैं, पर तुम्हें उससे खबरदार करते हैं। अपने कामों से साबित कर दो कि तुम इन्सान हो, खुदातर्स हो, यहां की रैयत को पालने आये हो, लोगों को गिरी हालत से उठाने आये हो, लोग यह न समझे कि मतलबी हो, नाखुदातर्स हो, अपने मतलब के लिये इस मुल्क के लड़कों को 'बन्देय मातरम्' कहने से भी बन्द करते हो।

ख्याल रखो कि दुनिया चन्दरोजा है। आखिर सबको उस दुनिया से काम है, जिसमें हम हैं। सदा कोई रहा न रहेगा। नेकनामी या बदनामी रह जावेगी। तुम जुल्म से बंगालियों को मत रुलाओ, बल्कि ऐसा करो जिससे तुम्हारे लिये तुम्हारे अलग होने के वक्त बंगाली खुद रोवें। फकत।

शाइस्ताखां का खत - 2

फुलर साहब के नाम।

बरादरम् फुलर जंग। तुम्हारी जंग खत्म हो गई। यह लड़ाई तुम साफ हारे। तुमने अपनी शमशीर भी म्यान में कर ली। इससे अब तुम्हारे अलकाब में 'जंग' जोड़ने की जरूरत नहीं है। पर जिस तरह तुम्हारी नवाबी छिन जाने पर भी हिन्दुस्तानी सरकार तुम्हें बम्बई में विलायती जहाज पर तुम्हारे मामूली नवाबी ठाट से चढ़ा देना चाहती है, उसी तरह मैंने भी मुनासिब समझा कि उस वक्त तक तुम्हारा अलकाव भी बदस्तूर रहे। इसमें हर्ज ही क्या है।

सचमुच तुम्हारी हुकूमत का अंजाम बड़ा दर्दनाक हुआ, जिसे तुमने खुद दर्दनाक बताया है। मुझे उसके लिये ताज्जुब नहीं, क्योंकि वह अटल था। पर अफसोस है कि इतना जल्द हुआ। मैं जानता था कि ऐसा होगा, उसका इशारा मेरे पहले खत में मौजूद है। पर यह ख्याल न करता था कि दस ही महीने में तुम्हारी

नकली नवाबी तय हो जायेगी। वल्लाह, भानमती के तमाशे को भी मात किया। अभी गुठली थी, जरा-सा पानी छिड़क कर दो छटांक मट्टी में दबा देने से फूट निकली। दो पत्ते निकल आये। चार हुए। बहुत हुए। पेड़ हुआ, फल लगे। थोड़ी देर में वही गुठली और वही टीन का लोटा मियां मदारी के हाथ में रह गया।

तुमने यह सुनकर कि नवाबोंके कई कई बेगमें होती थीं, अपने रिआया में से दो बेगमें फर्ज कीं। मगर उनमें जो होशियार थी, उसने तुम्हें मुंह न लगाया और न तुम्हारी नवाबी तसलीम की। जो भोली थी, उसे तुमने रिझाया। पर वह बेचारी अभी यह समझने न पाई थी कि तुम उसके हुस्नोसीरत पर नहीं रीझे, बल्कि होशियार बेगम की बेएतनाई से कुढ़ कर मतलब की मुहब्बत दिखाते थे, जिसकी बुनियाद निहायत कमजोर थी। अफसोस तुम्हारी यह शान भी न चली। सिर्फ दो बेगमों को भी तुम न रिझा सके। सच है, कहीं बुलहवसी भी मुहब्बत हो सकती है।

और तुमने सुना होगा कि नवाब सख्ती बहुत किया करते थे। उनके अमलमें सब तरह की अन्धाधुन्ध चल सकती थी। इसी से तुमने भी सख्ती और अन्धाधुन्ध शुरू की। अपनी जबरदस्ती से तुमने उस जोश को रोकना चाहा, जो अपने मुल्क की बनी चीजों के फैलाने औ गैर-मुल्क की चीजों के रोकने के लिये बंगाल में बड़ी तेजी से फैल रहा था। तुमने इस बात पर ख्याल न किया कि जो जोश तुम्हारे अफसरे आला की सख्ती से पैदा हुआ है, वह सख्ती औ जबरदस्ती से कैसे दब सकता है। शायद तुमने समझा कि वह पूरी सख्ती से दबाया नहीं गया, इसीसे फैला है, तुम्हारी सख्ती उसे दबा देगी और जो काम तुम्हारे खुदावन्द से न हुआ, उसके कर डालने की बहादुरी तुम हासिल कर लोगे। मगर अब तुम्हें अच्छी तरह मालूम हो गया होगा कि ऐसा समझने में तुमने कितनी बड़ी गलती खाई। तुम्हारे आला अफसर ने यह ओहदा तुम्हारी बेहतरी के लिये तुम्हें नहीं दिया था, बल्कि अपनी जिद्द पूरी कराने या अपना उल्लू सीधा कराने के लिये। मगर उसकी वह आरजू पूरी न हुई, उल्टी तुम्हें तकलीफ और खिफ्फत उठानी पड़ी। तुम सच जानो तुम्हारे ओहदे पर बैठने के लिये तुमसे बढ़कर लायक और हकदार लोग कई मौजूद थे। मगर वह लोग थे जो अपनी अक्ल से काम लेते और इस बातपर खूब गौर करते कि सख्ती करके जब हमारे आला अफसर ने शकस्त खाई है तो हमें उसमें फतह कैसे हासिल होगी। तुम्हें भी अगर इतना सोचने की मोहलत मिलती तो तुम चाहे इस ओहदेही को कबूल न करते या उस रास्ते को तर्क करते, जिस पर तुम चलकर खराब हुए।

देखो भाई। जो गुजर गया है, उसे कोई लौटा नहीं सकता। बहकर दूर निकल गया हुआ नदी का पानी क्या कभी फिर लौटा हैं? पांच सौ बरस का या मेरा दो, सवा दो सौ साल का जमाना फिर लौटा लेना तो बहुत बड़ी बात है, तुम अपनी नवाबी के बीते हुए दस महीनों को भी लौटाने की ताकत नहीं रखते। क्या तुम सन् 1906 ईस्वीं को पीछे हटाकर 1406 बना सकते हो? नहीं, भाई इतने वर्ष तो कहां, तुममें 20 अगस्त को 19 बनाने की भी ताकत नहीं है। जरा पांच सौ साल पहले की अपने मुल्क की तारीख पर निगाह डालो। उस वक्त तुम्हारी कौम क्या थी? अगर तुम किसी तरह उस जमाने तक पहुंच जाओ तो अपनी शक्ल पहचान न सको। दुनिया तारीक दिखाई देने लगे और तुम खौफ से आंखें बन्द कर लो। दुनिया में तुम्हें अपना कोई मातहत मुल्क नजर न आवे, बल्कि अपने ही मुल्क में तुम्हें अपने को बेगाना समझना पड़े।

हिन्द में मेरा जमाना लाने के लिये तुम्हें रेल-तार तोड़ने, दुखानी जहाज गारत करने, डाक उठवा देने, गैस बिजली वगैरह को जेहन्नम रसीद कर देने की जरूरत है। नहरें पटवा देने और सड़कें उठवा देने की जरूरत है। साथ ही तालीम को नेस्तोनाबूत कर देनेकी जरूरत है। तुम सबको छोड़ कर एक तालीम को मिटाने की तरफ झुके थे। यह हिदायत तुम्हें तुम्हारे मालिक मुर्शिद लाट कर्जन की तरफ से हुई थी। पर अंजाम और ही हुआ। तालीम गारत न हुई, बल्कि और तरक्की पा गई। बंगाली अपना कौमी दारुलउलूम बनाते हैं। गारत हुई पहले तुम्हारी नेकनामी और पीछे नौकरी।

रिआया और मदरसे के तुलबा से लड़ते-लड़ते तुमने नवाबी खत्म की। लोगों को आम जल से करने और कौमी नारे मारने से रोका। लड़कों को अपने मुल्की मालकी तरफ मुतवज्जह देखकर तुमने उनको जेल में भिजवाया, स्कूलों से निकलवाया और पिटवाया। तुम्हारे इलाके बरीसाल में तुम्हारे मातहतों ने इस मुल्क की रिआया के सबसे आला इज्जतदार और तालीमयाफ्ता बेइज्जत करने की निहायत खफीफ हरकत की। तुमने अपने मातहतों का इसमें साथ दिया। नतीजा यह हुआ कि हाईकोर्ट से तुम्हारे कामों की मलामत हुई। तुमने बड़ी शेखी से कहा था कि हाईकोर्ट मेरा कुछ नहीं कर सकती, पार्लीमेंट मेरे हुक्म को रोक नहीं सकती। मगर दोनों बातें गलत साबित हुई। हाईकोर्ट से तो तुमने मलामत सुनी ही पार्लीमेन्ट से भी वह सुनी कि सारी नवाबी भूल गये। तुम्हारी होशियारी और लियाकत का इसी से पता लगता है कि तुम्हारे अफसर का हुक्म पहुंचने से पहले तुम्हारे सूबेमें एक बन्दये खुदा को बे-वक्त फांसी हो गई।

तुम्हारी इन हरकतों पर यहां जन्नत में खूब खूब चर्चे होते हैं। पुराने बादशाह और नवाब कहते हैं कि भाई। यह फरंगी खूब हैं। एशियाई लोगों के ऐब तलाश करने ही को यह अपनी बहादुरी समझते हैं। दिखाने को तो उन ऐबों से नफरत करते हैं, पर हकीकत देखिये तो उनको चुन-चुन कर काम में लाते हैं। मगर हुनरों से चश्मपोशी करते हैं। तुम लोग हमारे जमाने के ऐबों को काम में लाने से नहीं हिचकते। मगर उस जमाने के हुनरों की नकल करने की तरफ ख्याल नहीं दौड़ाते, क्योंकि वह टेढ़ी खीर है। कहां आठ मन के चावल और कहां हथियार बांधने की आजादी।

आठ मन के चावलों की जगह तुम खुश्कसाली और कहत छोड़कर जाते हो। हथियारों की आजादी की जगह दस आदमियों का मिलकर निकलना मजलिसें करना और 'वन्देमातरम्' कहना बन्द किये जाते हो। अरे यार। इतना तो सोचा होता कि पिंजरे में भी चिड़िया बोल सकती है। कैद में भी जबान कैद नहीं होती। तुमने गजब किया लोगों का मुंह तक सी दिया था।

और भी अहलेजन्नतने एक बात पर गौर किया है। वह यह कि किस भरोसे पर तुम अपने सूबे के लोगों को मेरे जमाने में फेंक देने की जुरअत करते थे। इसकी वजह सुनिये। तुम खूब जानते हो कि तुम्हारी डेढ़ सौ साल की हुकूमत ने तुम्हारे सूबे के लोगों को कुछ भी आगे नहीं बढ़ाया। वह करीब-करीब दो सौ साल पहले के जमाने ही में हैं। तुम उनको बढ़ाते तो आज वह तुमसे किसी बात में सिवा चमड़े के रंग के कम न होते। पर तुमने उन्हें वहीं रखा, बल्कि उनकी कुछ पुरानी खूबिया छीन लीं और पुराने-पुराने हुकूक जब्त कर लिये। दी थी कुछ तालीम और कुछ नौकरियां, उन्हीं को छीनकर तुम उन्हें औरंगजेब के जमाने में फेंकना चाहते थे, वरना और दिया ही क्या था, जो छीनते और बढ़ाया ही क्या था, जो घटाते?

अपनी दस महीने की नवाबी से तुम खुद तंग आ गये थे। इसी से कयास कर लो कि गरीब रैयत को कैसी तकलीफ हुई होगी। सब तुम्हारे जाने से खुश हैं। ताहम खुशकिस्मती से हमारी मरहूम कौम रोने को तैयार है। उसे तुम प्यारी बेगम कहकर बेवा बना चले हो। वह तुम्हारे फिराक में टिसवे बहाती है। तुम्हें घरतक पहुंचा देने में वह टिसवे तुम्हारी मदद करेंगे। भाई। हमारी कौम की सल्तनत गई, हुकूमत गई, शानो-शौकत गई, पर जिहालत और गुलामी की आदत न गई। वह मर्द नहीं बनना चाहती, बल्कि रांड रहकर सदा एक खाविन्द तलाश करती रहती है। देखें तुम्हारे बाद क्या करती है।

तूल फिजूल है। तुम चले, अब कहने से ही क्या है? पर जो तुम्हारे जानशीन होते हैं, वह सुन रखें कि जमानेके बहते दरिया को लाठी मार के कोई नहीं रोक सकता। दूसरे को तंग करके कोई खुश रह नहीं सकता। अपने मुल्क को जाओ और खुदा तौफीक दे तो हिन्दुस्तान के लोगों को कभी-कभी दुआएं खैर से याद करना। वस्सलाम् -

सर सैय्यद अहमद का खत

अलीगढ़ कालिजइ के लड़कों के नाम

मेरे प्यारो, मेरी आंखों के तारो, मेरी कौम के नौनिहालो!

जिन्दगी में मैंने इज्जत, नामवरी बहुत कुछ हासिल की, मगर यह कहूंगा और मेरा यह कहना बिल्कुल सच है कि तुम्हारी बेहतरी की तदबी रही में मैंने अपनी उम्र पूरी कर दी। तुम लोगों की तरक्की और बेहबूदी के ख्याल ही को मैं अपनी जिन्दगी का हासिल समझता रहा। होश सम्हालने के दिन से अखीर दम तक इस कौमेमरहूम का मरसियाही मेरी जुबान पर जारी था। लाख-लाख शुक्र की जगह है कि मेरी मेहनत बेकार न गई। तुम्हारे लिये मैं जो कुछ चाहता था, उनमें से बहुत कुछ पूरा हुआ और तुम्हें एक अच्छी हालत में देखलेने के बाद मैंने खुदा को जान सौंपी।

उस दिन मेरे मजार पर आकर तुमने निढ़ाल होकर अपने आंसुओं के मोती बखेर दिये। उस वक्त की अपने दिल की कैफियत क्या जाहिर करूं कि मुझ पर क्या गुजरती थी और तबसे मुझे कितनी बेचैनी है। हाय!

चि मिकदार खूं दर अमद खुर्दा बाशम।

कि बर खाकम आई ओ मन मुर्दा बाशम॥

काश! मुझमें ताकत होती कि मैं उस वक्त तुमसे बोल सकता और तुम्हारे पास आकर तुम्हें गोद में लेकर कलेजा ठण्डा करता और तुम्हारे फूल से मुखड़ों से आंसू पोंछकर तुम्हें हंसाने की कोशिश कर सकता। मगर आह! यह सब बातें नामुमकिन थीं, इससे मुझ पर जो कुछ बीती वह मैं ही जानता हूं। मर कर भी मुझे आराम न मिला। इस नई दुनिया में आकर भी मुझे कल न मिली।

अजीजो! जिस हालत में तुम इस वक्त पढ़े हो, इसका मुझे जीते जी ही खटका था। खासकर अपनी जिन्दगी के अखीर दिनों में मुझे बड़ा ही ख्याल था। इसके इन्सदाद की कोशिश भी मैंने बहुत कुछ की, मगर खुदा को मंजूरन थी, इससे काम बनकर भी बिगड़ गया। तुममें से बहुतों ने सुना होगा कि मैंने अपनी

मौजूदगी ही में यह फैसला कर दिया था कि मेरे बाद महमूद तुम्हारे कालिज का लाइफ सेक्रेटरी बने। इस पर वह शोरिश मची और वह तूफाने बेतमीजी बरपा हुआ कि अल अमान! मेरी सब करनी धरनी भूल कर लोग मुझे खुदगरज और मतलबी कहने लगे। उस कौमी कालिज को मेरे घर का कालिज बताने लगे और ताने देने लगे कि मैं अपने बेटे को अपना जानशीन बनाकर कौम से दगा करता हूं। मुझ पर 'अहमद की पगड़ी महमूद के सिर' की फबती उड़ाई गई। पर मैंने कुछ परवा न की। सय्यद महमूद को लाइफ सेक्रेटरी बनाया। अपने जीते जी एक अपने से भी बढ़कर लायक सेक्रेटरी तुम्हारे कालिज को दे गया था। पर अफसोस उसकी उम्र ने वफा न की। मेरे थोड़े ही दिन पीछे वह भी मेरे ही पास चला आया।

इस वक्त तुम पर जो कुछ गुजरी है, अगर मैं होता तो उसकी यह शक्ल कभी न होती। न सय्यद महमूद की मौजूदगी में ऐसा करने की किसी की हिम्मत होती। मगर अफसोस हम दोनों ही नहीं। जो हैं, उनके बारे में और क्या कहा जाये, अच्छे हैं। कालिज के नसीब। कौम के नसीब। अजीजो। यह कालिज तुम्हारे लिये बना था। तुम्हीं उसमें से निकाले जाते हो, तो यह किस काम आवेगा? उफ। मेरी समझ में नहीं आता कि मैंने तुम्हारे लिये यह दारुलउलूम बनाया था या गुलामखाना। तुम्हारे मौजूदा सेक्रेटरी क्या ख्याल करते होंगे?

मगर क्या पस्तख्याली का नतीजा पस्ती न होना चाहिये? तुम्हारी और तुम्हारे कालिज की मौजूदा हालत का क्या मैं ही जिम्मेदार नहीं हूं? क्या यह इस वक्त का दर्दनाक नज्जारा मेरी चाल का नतीजा नहीं है? हां। यह जंजीरें कौमी तरक्की के पांवों में अपने ही हाथों से डाली गई हैं, दूसरा कोई इसके लिये कसूरवार नहीं ठहर सकता। अगर इबतिदा से अखीर तक मेरी चाल एक ही रहती तो यह खराबी काहे को होती? कौमी पस्ती का ऐसा सीन देखने में न आता।

न जिल्लत से नफरत न इज्जत का अरमां।

मैं वही हूं, जिसने 'असबाबे बगावत' लिखकर विलायत तक में खलबली डाल दी थी। इन सूबों में मैं ही पहला शख्स हूं, जिसने अंग्रेजों को आम रिआया की राय का ख्याल दिलाया। मैंने ही सबसे पहले डंके की चोट यह जाहिर किया था कि अगर हिन्दुस्तान की कौंसिलों में अंग्रेज, रिआया के कायम मुकाम लोगों को शामिल करते तो कभी गदर न होता। तुम कभी न समझना कि मैं अंग्रेजों की खुशामद किया करता था, या खुशामद को किसी कौम की तरक्की का जीना समझा करता। बल्कि मैंने सदा अंग्रेजों से बराबरी का बर्ताव किया है।

कितने ही बड़े-बड़े अंग्रेज अफसर मेरे दोस्त रहे हैं, मैंने सदा उनसे दोस्ताना और बेतकल्लुफाना गुफ्तगूं की है। कभी उनकी अफसरी या हाकिमीका रोब मानकर उनसे बर्ताव नहीं किया। खुदा की इनायत से सय्यद महमूद की तबीयत में मुझसे भी ज्यादा आजादी थी और साथ ही उसने मगरबी इल्मों में भी फजीलत हासिल की थी, जिससे उस आजादी की चमक दमक और भी बढ़ गई थी। यही वजह थी कि मैंने महमूद को जीते जी अपना कायम मुकाम और तुम्हारे कालिज का सेक्रेटरी मुकर्रिर किया था। अगर वह होता तो आज तुम लोगों की आजादी और इज्जत एक मामूली हिन्दुस्तानी कान्स्टेबल की हिमायत में ठोकर न खाती फिरतीं और तुम्हें कालिज से निकालकर कान्स्टेबलों को कालिज के अहाते में न ला खड़ा किया जाता।

मेरे बच्चो! मेरी एक ही कमजोरी का यह फल है, जिसे तुम भोग रहे हो और जिसके लिये आज मेरी रूह कब में भी बेकरार है। मेरी उस कमजोरी ने खुदगर्जी और खुशामद का दर्जा हासिल किया। पर सच यह है, मैंने जो कुछ किया कौम की भलाई के लिये किया, अपने फायदे के लिये नहीं। पर वैसा करना बड़ी भारी भूल थी, यह मैं कबूल करता हूं और उसका इतना खौफनाक नतीजा होगा, इसका मुझे ख्वाब में भी ख्याल न था। मैंने यही समझा था कि इस वक्त मसलहतन यह चाल चल ली जाये, आगे चलकर इसकी इसलाह कर ली जायेगी। मैं यह न समझा था कि यह चाल मेरी कौम के रगोरेशे में मिल जायेगी और छूटने के बजाय उसकी खूश्बू और आदत बन जायगी। अफसोस! खुद कर्दा अम खुद कर्दारा इलाजे नेस्त।

❐❐❐